दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

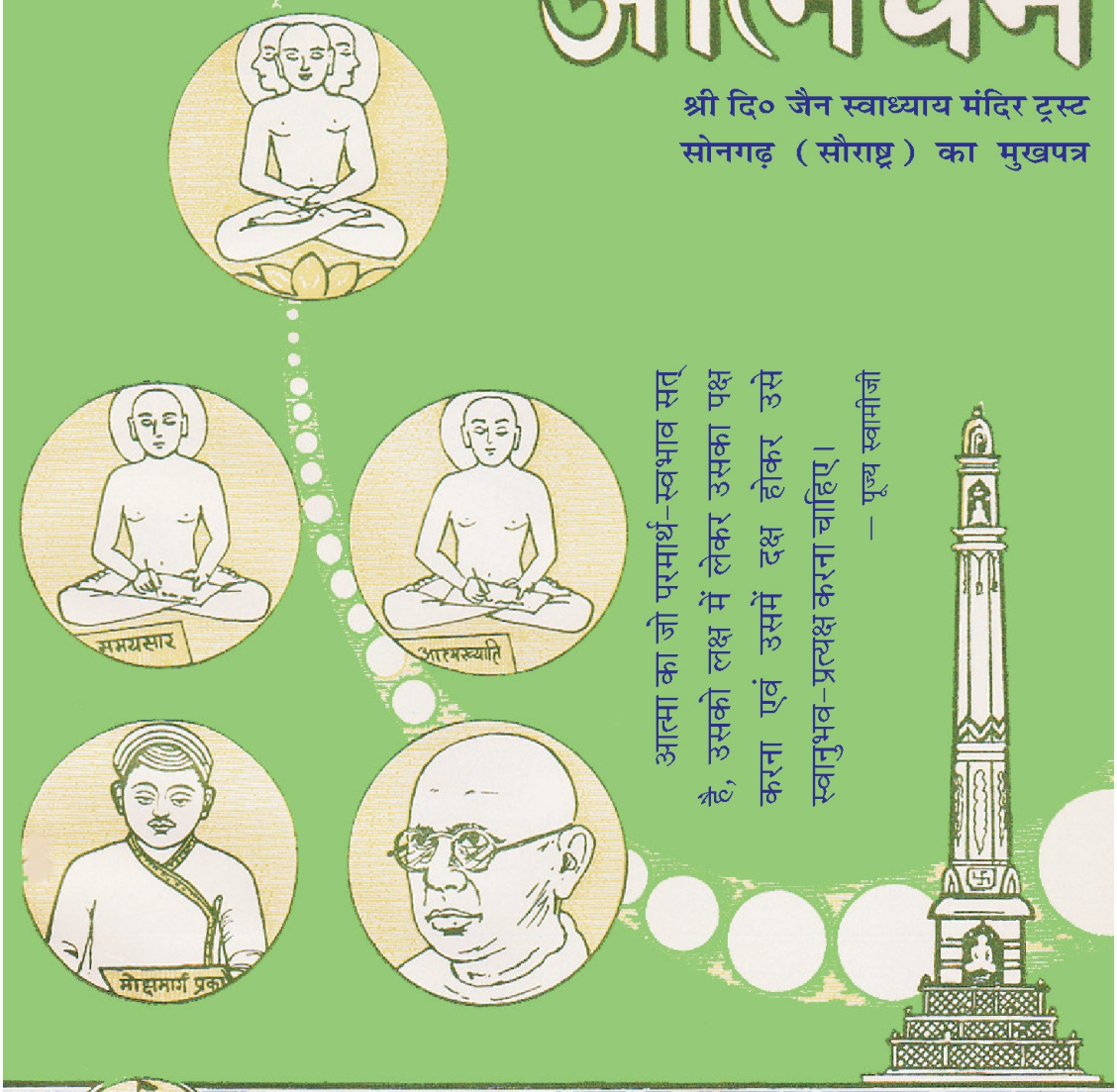

आत्मा का जो परमार्थ-स्वभाव सत् है, उसको लक्ष में लेकर उसका पक्ष करना एवं उसमें दक्ष होकर उसे स्वानुभव-प्रत्यक्ष करना चाहिए।
— पूज्य स्वामीजी

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३५ : अंक ९ [४१७] मार्च, १९८०

आत्मधर्म [४१५]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी, तामिल तथा कन्नड़ — इन पाँच भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

कहाँ / क्या

१ वर्द्धमान वन्दना
२ ज्ञानी संतों का आदेश
३ संपादकीय : इतिहास में पहली बार
४ जैसे सिद्ध वैसे ही संसारी
[नियमसार प्रवचन]
५ ज्ञान ही प्रत्याख्यान है
[समयसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ 'क्रमबद्धपर्याय' पर अभिमत
१० प्रबंध-संपादक की कलम से

भाई ! आत्मकल्याण करने का यह मौसम है। जिसप्रकार मौसम आने पर वृक्ष फल-फूलों से भर जाते हैं, स्वाति-बिंदुओं से मोती उत्पन्न होते हैं; उसीप्रकार चैतन्य में सम्यग्दर्शनादि रत्न उत्पन्न होने का यह मौसम है।

—पूज्य कानजीस्वामीजी

आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३५ [४१७] अंक : ९

महावीर जयंती के अवसर पर

वर्द्धमान वंदना

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघाइकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं॥

मैं उन वर्द्धमान भगवान को नमस्कार करता हूँ जो सुरेंद्रों, असुरेंद्रों और नरेंद्रों से वंदित हैं और जिन्होंने घातिकर्मरूपी मैल को धो डाला है तथा जो धर्मतीर्थ के कर्ता हैं।

नमः श्री वर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानाम् यद्विद्या दर्पणायते।

जिनके केवलज्ञानरूपी दर्पण में अलोकाकाश सहित तीनों लोक झलकते हैं और जिन्होंने ज्ञानावरणादि पापरूपी मैली को धो डाला है, उन वर्द्धमान भगवान को नमस्कार हो।

जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यान में।
जिनके विराट् विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान में॥
युगपद् विशद् सकलार्थ झलकें, ध्वनित हों व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में॥

बीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से बीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

ज्ञानी संतों का आदेश

हे जीव! मैं ज्ञायक हूँ—ऐसा निर्णय करके अंतर में उसकी खोज कर। और जब तक ज्ञायकस्वभाव का पता न चले तब तक अंतर में सच्ची लगनपूर्वक उसी का प्रयत्न किया कर।

चैतन्यनिधि अमृत का सागर यहाँ तेरे पास ही भरा पड़ा है, उपयोग को अंतर्मुख करे—इतनी ही देर है; उपयोग को अंतरोन्मुख करते ही तुझे अपने आत्मा में ऐसे आनंद का अनुभव होगा जो पहले कभी न हुआ हो।

सब-कुछ तुझमें विद्यमान है; कहीं बाहर ढूंढ़ने के लिये नहीं जाना है।

''मेरा किसी से कोई संबंध नहीं है, मैं तो ज्ञायक हूँ, मेरे ज्ञायकपने में राग का भी अभाव है।''

इसप्रकार सबके साथ संबंध तोड़कर अंतर में एक ज्ञायक के साथ ही संबंध जोड़ना चाहिये। ''ज्ञायक ही मैं हूँ''—इसप्रकार अंतर में शांतिपूर्वक एकाग्र होकर ज्ञायक का अनुभव करना चाहिये। उस अनुभव में आनंदस्वरूप परमात्मतत्त्व प्रगट होता है।

पूज्य कानजीस्वामी

— आत्मधर्म, वर्ष १५, अंक १७८, फरवरी १९६०, पृष्ठ ४५८

सम्पादकीय

इतिहास में पहली बार

केनिया (पूर्वी अफ्रीका) की राजधानी नैरोबी में विशाल दिगंबर जिनमंदिर का निर्माण और भव्य समारोह के साथ दिगंबर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव का होना इतिहास की अभूतपूर्व घटना है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, इतिहास में यह पहला ही प्रसंग है कि जब भारत के ही नहीं, एशिया महाद्वीप के भी बाहर, अफ्रीका महाद्वीप में दिगंबर जिनमंदिर का निर्माण हुआ है।

वैसे तो दिगंबर जिनपरंपरा में पूज्य श्री कानजीस्वामी का उदय भी बीसवीं सदी का एक आश्चर्य ही है। पूज्य श्री कानजीस्वामी ने इस कलिकाल में अपने तलस्पर्शी अध्ययन, अनुभव और गुरु-गंभीर वाणी द्वारा विस्मृतप्रायः दिगंबर धर्म के मर्म का उद्घाटन तो डंके की चोट पर किया ही, साथ ही उसे जन-जन की वस्तु भी बना दिया। तत्त्व की गहराई में जितने गहरे गोते उन्होंने लगाये, उससे भी अधिक विस्तार उन्होंने उसे दिया।

जहाँ एक ओर उन्होंने समयसार की एक-एक गाथा की गहनता गहराई में प्रवेश कर उसके मर्म को खोजा—खोला, वहीं दूसरी ओर उन्होंने ग्रंथ भंडारों में बंद समयसार को घर-घर में भी पहुँचा दिया। मात्र घर-घर तक ही नहीं पहुँचाया; उसे जन-जन की वस्तु बना दिया, जन-जन के हृदयों तक पहुँचा दिया, लोगों की जबान पर चढ़ा दिया।

आज सारे भारतवर्ष के दिगंबर जिनमंदिरों में जो समयसार की चर्चा होती देखी जाती है, वह कानजीस्वामी की ही देन है।

उन्होंने समयसार को मात्र ग्रंथ भंडारों की चारदीवारी से ही बाहर नहीं निकाला, अपितु उसे भारत की सीमा के पार पहुँचाने का श्रेय भी उन्हें प्राप्त है। उनके प्रताप से आज अफ्रीका में ही नहीं; अमेरिका, यूरोप महाद्वीप में भी समयसार पहुँच चुका है, वहाँ भी वह बड़ी श्रद्धा के साथ पढ़ा जाता है।

मात्र समयसार का ही नहीं, अपितु संपूर्ण जिनागम का प्रचार-प्रसार आज उनके

माध्यम से बड़ी तेजी के साथ हो रहा है। पूज्य स्वामीजी के माध्यम से जिनागम के सौ से अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की अनेक भाषाओं में तीस लाख से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित होकर घर-घर में पहुँच चुकी हैं। उनके माध्यम से जिनागम के मूल विचारों का प्रबल प्रचारक मासिक पत्र आत्मधर्म आज पाँच भाषाओं में पंद्रह हजार की संख्या में प्रतिमाह प्रकाशित होता है; जो देश में ही नहीं, विश्व के अनेक देशों में भी जाता है।

है कोई इतिहास का ऐसा पृष्ठ, जिसमें जिनागम का इतना विस्तृत प्रसार हुआ हो ?

गहराई के साथ विस्तार—यह स्वामीजी की अभूतपूर्व देन है, जिसे दृष्टि से ओझल करना संभव नहीं है।

तत्त्व की गहरी चर्चा जो कि आज तक गोष्ठियों का विषय मानी जाती रही है, स्वामीजी के प्रताप से आज उसे भी विस्तार मिला है। आज वह भी आमसभा की विषयवस्तु बन गई है। बम्बई जैसी मायानगरी में स्वामीजी के गुरुगंभीर तात्त्विक प्रवचनों को सुनने के लिये लगातार महीनों दस-दस हजार लोग प्रतिदिन आते हैं। इस भौतिकवादी युग में यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं है।

दिगंबर जिनधर्म की प्रभावना में स्वामीजी का अभूतपूर्व योगदान इतिहास के पृष्ठों में चिरस्मरणीय रहेगा। जिस काठियावाड़ में सैकड़ों मील तक दिगंबर जिनमंदिर दिखाई नहीं पड़ते थे, आज गाँव-गाँव में अनेक गगनचुंबी भव्य जिनमंदिर मिल जावेंगे।

नवीन दिगंबर जिनमंदिरों की परंपरा का यह प्रवाह आज देश की सीमा को लांघ चुका है।

अफ्रीका महाद्वीप के केनिया नामक देश की राजधानी नैरोबी में निर्मित यह भव्य जिनमंदिर और संपन्न यह विशाल महोत्सव भी उनके सदुपदेशों के प्रताप व प्रभाव का फल है। अपने साढ़े तीन सौ अनुयायियों के साथ नब्बे वर्ष की वृद्धावस्था में वे स्वयं वहाँ गये और उनके ही सान्निध्य में यह विशाल महोत्सव सानंद संपन्न हुआ।

पूज्य स्वामीजी तो केनिया में जनवरी, ८० में पहुँचे, पर उनका प्रताप और प्रकाश तो बहुत पहले वहाँ पहुँच चुका था। लगभग पन्द्रह-बीस वर्ष पहले से ही वहाँ के लोग उनके पास आते रहे हैं, उनके प्रवचनों का लाभ लेने के लिये सोनगढ़ महीनों ठहरते रहे हैं। शास्त्रों और उन पर हुए स्वामीजी के प्रवचनों की पुस्तकें एवं प्रवचनों के टेप ले जाते रहे हैं।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि नैरोबी दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल में पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों के पाँच हजार टेप हैं, जो कि प्रतिदिन चलाये जाते हैं और सभी साधर्मी भाई उनसे लाभ लेते हैं। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव के अवसर पर हुए गुरुदेवश्री के प्रवचनों की लगभग ५० घंटे की बोलती फिल्म [वीडियो टेप] तैयार हुई है, जिसका उपयोग प्रचार-प्रसार के लिए निरंतर किया जावेगा। 'अहिंसा' आदि विषयों पर हुए मेरे भी तीन महत्त्वपूर्ण व्याख्यानों की बोलती फिल्म (वीडियो टेप) तैयार की गयी थी।

नैरोबी में निर्मित जिनमंदिर मात्र वैभव का प्रदर्शन नहीं है, मात्र मिलने-जुलने का साधन (क्लब) भी नहीं है; अपितु वहाँ निरंतर स्वाध्याय का क्रम चलता है, प्रवचन होता है, बड़ी ही भक्ति से प्रतिदिन पूजन-पाठ होता है। अब तो बालकों में धार्मिक संस्कार डालने के लिए वहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव के अवसर पर एक वीतराग-विज्ञान पाठशाला की स्थापना भी हो गई है, जिसका संबंध पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड से रहेगा। प्रतिवर्ष परीक्षाऐं होंगी। अध्यापन के लिए प्रसिद्ध आत्मार्थी विद्वान श्री देवसीभाई वहाँ रुक गये हैं।

युवकों में सदाचार के संस्कार डालने हेतु अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की शखा भी गठित की गयी है।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव के अवसर पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों से प्रभावित होकर अनेक दंपतियों ने ब्रह्मचर्य व्रत लिया, रात्रिभोजनत्यागादि की प्रतिज्ञाऐं लीं। एक दिन तो जब स्वामीजी सदाचारमय जीवन की प्ररेणा दे रहे थे तो उससे प्रभावित होकर श्वेतांबर समाज के एक प्रमुख सेठ श्री केशवभाई बीच में ही खड़े हो गए और गद्‌गद् होकर अभक्ष्य-भक्षणादि के त्याग की प्रतिज्ञा करने लगे। वैसे तो वहाँ सभी मुमुक्षु भाईयों का जीवन सदाचारमय है। तत्त्व की गहरी चर्चा समझनेवाले आत्मार्थी बंधु भी वहाँ हैं।

इसप्रकार स्वामीजी के माध्यम से वहाँ जो धर्म का रूप पहुँचा है, वह जीवंत है, मात्र नाममात्र का नहीं।

स्वामीजी के प्रताप से ही और भी अनेक देशों में ऐसी ही प्रवृत्तियाँ पनप रही हैं, अत: ऐसा लगता है कि शीघ्र ही अन्य देशों में भी जिनमंदिर बनेंगे, प्रतिष्ठाऐं होंगी, और चाहे थोड़े

रूप में ही सही, एकबार दिगंबर धर्म विश्वभर में अपना स्थान बना लेगा।

नैरोबी पंचकल्याणक महोत्सव में धर्म प्रभावना की विस्तृत चर्चा करना यहाँ इष्ट नहीं है, उपयुक्त भी नहीं है। तत्संबंधी विस्तृत समाचार गतांक में प्रकाशित हो चुके हैं, जिज्ञासु पाठक वहाँ देखें।

यद्यपि मुमुक्षु समाज में इस धर्म प्रभावना के प्रति भारी उत्साह देखने में आया तथापि देश में इसका जितना और जैसा प्रचार होना चाहिए था, वैसा नहीं हुआ है। समाज को इस क्रांति का जैसा और जितना स्वागत करना चाहिए था वैसा देखने में नहीं आ रहा है। दिगंबर समाज की यह उदासीनता भी कम आश्चर्य की बात नहीं है।

दिगंबर जिनधर्म का मस्तक ऊँचा उठानेवाली इस धर्म प्रभावना का व्यापक प्रचार करना तो बहुत दूर, दिगंबर समाज ने तो समाचार पत्रों में इसकी चर्चा तक नहीं की, किंतु दिगंबर मान्यताओं से पूरी तरह अनभिज्ञ किसी व्यक्ति ने जब १ जनवरी, १९८० के जैनपथ प्रदर्शक में प्रकाशित समाचारों को देखकर एवं अपनी ओर से उसमें मेरा नाम जोड़कर तथा श्री कानजीस्वामी के नाम के साथ 'दिगंबर मुनि' शब्द लगाकर इंदौर से निकलनेवाले 'नई दुनियाँ' अखबार में जो कुछ उसकी समझ में आया प्रकाशित कर दिया, वह भी उस समय जबकि स्वामीजी अपने प्रायः सभी सक्रिय प्रमुख अनुयायियों सहित केनिया की राजधानी नैरोबी में थे, तब और सब बातों को गौण कर 'दिगंबर मुनि' शब्द को लक्ष्य बनाकर समाज के ही कुछ कलहप्रिय तत्त्वों ने उनके विरुद्ध एक आंदोलन-सा चला दिया। गाँव-गाँव में उसकी फोटोस्टेट कापियाँ बाँटी गई, पेम्फलेट छापे गए और घर-घर तक यह समाचार पहुँचाया गया कि ''लो, अब कानजीस्वामी सवस्त्र दिगंबर मुनि घोषित कर दिये गये हैं; वह भी मेरे द्वारा।''

पर समाज ने उस बात पर विश्वास नहीं किया, क्योंकि यह बात विश्वास करने लायक थी ही नहीं।

इस घटना ने आत्मधर्म में प्रकाशित उन इंटरव्यूओं की उपयोगिता भी सहज सिद्ध कर दी जो कि समय-समय पर स्वामीजी के संबंध में बुद्धिपूर्वक फैलाये गये भ्रमों के निवारणार्थ प्रकाशित होते रहे हैं। उनके द्वारा तत्कालीन भ्रमों को दूर करने में तो मदद मिली ही थी,

आगामी काल में भ्रम न फैलाए जा सकें—इसकी भी व्यवस्था हो गयी है। इसका अनुभव हमें उन सैकड़ों पत्रों से हुआ है, जो हमें इस समाचार के संदर्भ में प्राप्त हुए हैं और जिनमें स्पष्ट लिखा है कि हमें विश्वास ही नहीं होता कि आप कानजीस्वामी को दिगंबर मुनि कह सकते हैं ? कहीं न कहीं कुछ न कुछ गड़बड़ हुई है। अनेक लोगों ने तो यह भी लिखा है कि आपकी बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखकर कहीं किसी ने आपको बदनाम करने की चेष्टा तो नहीं की है, आपको सावधान रहना चाहिये।

उक्त संदर्भ में २१ फरवरी, १९८० के जैन संदेश के संपादकीय में व्यक्त सिद्धांताचार्य पंडित कैलाशचंद्रजी वाराणसी के विचार दृष्टव्य हैं:—

''जहाँ तक हम जानते हैं आज तक कभी भी किसी मुमुक्षु भक्त ने स्वामीजी को मुनि नहीं कहा। स्वामजी तो अपने आपको व्रती भी नहीं कहते। अविरत सम्यग्दृष्टि से आगे उन्होंने अपने को कुछ कहा ही नहीं। .....आज स्वामीजी के उपदेश से प्रेरित होकर वे ही श्रावक (जो पहले मूर्ति पूजा विरोधी थे) अपना लाखों रुपया दि० जैन मंदिरों और मूर्तियों के निर्माण में खर्च करके अहंकार के साथ अपने को दि० जैन कहते हैं। यह क्या कोई छोटी बात है ? एक भिन्न नवीन संप्रदाय को स्वीकार करके अपने धन का विनियोग उसकी वृद्धि में करना क्या यह कम साहस का काम है ? आज तो भारत से बाहर दक्षिण अफ्रीका में लाखों रुपया लगाकर दि० जैन मंदिर और मूर्तियों की प्रतिष्ठा हुई है—यह सब उनका आयोजन है, जो दि० जैन नहीं थे; किंतु स्वामीजी के सदुपदेश से प्रभावित होकर दि० जैन बने हैं। किंतु हमारी दि० जैन समाज है कि उससे उसे हर्ष न होकर रोष जैसा होता है कि यह सब क्यों हो रहा है ? दि० जैनधर्म का यह विश्वव्यापी प्रचार यदि किन्हीं को खटकता है तो वे दि० जैन ही हैं, जिन्होंने इस धर्म को भी अपनी जागीर समझ रखा है। उन्हें अपनी यह जागीर लुटती नजर आती है।

श्री कानजीस्वामी से पहले हमारे संप्रदाय में एक तारणस्वामी हो गये हैं जो अध्यात्मी होने के साथ मूर्ति पूजा के विरोधी थे। किंतु श्री कानजीस्वामी मूर्ति पूजा विरोधी संप्रदाय में जन्म लेकर और उसके गुरु होने के बाद आचार्य कुंदकुंद का अध्यात्म पढ़कर अध्यात्मी होने के साथ मूर्ति पूजा के ऐसे भक्त हुए कि अपने भक्तों को प्रेरणा कर-करके गाँव-गाँव में दिगंबर जैन मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण कराकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराते हैं और इस तरह दि०

जैनधर्म की ध्वजा फहरा रहे हैं। वे चाहते तो मूर्तिपूजा विरोधी रहते हुए भी कुंदकुंद के अध्यात्म को अपना सकते थे। किंतु उन्होंने आचार्य कुंदकुंद के अध्यात्म के रहस्य को समझकर उसे अपने शुद्ध अंत:करण से अपनाया है।

आज वे और उनके भक्त अनुयायी पुराने दि० जैनों से किसी भी अंश में कम दि० जैन नहीं हैं, किंतु उनसे उत्कृष्ट ही हैं। क्योंकि पुराने दि० जैन तो देवदर्शन से भी विरत होते जाते हैं। उनके मंदिरों में प्रतिदिन पूजा करने की समस्या पैदा होती जाती है। परंतु नवीन दि० जैन नित्य प्रति देवदर्शन और पूजन भी स्वयं करते हैं।

हम विश्व में अपने धर्म का प्रचार करना चाहते हैं किंतु स्वयं हम में से हमारा धर्म निकलता जाता है। हमारे भट्टारकगण विदेश में जाकर जैनधर्म पर भाषण देते हैं तो हम उनका स्वागत-सत्कार करते हैं, समाचार पत्र में उनके फोटो छापते हैं, हर्षित होते हैं। किंतु श्री कानजीस्वामी ने विदेश में जाकर दि० जैन मंदिर की स्थापना की, धर्मोपदेश दिया—उस पर प्रसन्नता प्रकट न करके ऐसी स्थिति पैदा करते हैं, जिससे उनका अपवाद हो, वे जनता की दृष्टि में गिरें। यह कितने खेद की बात है ?.....

आज हमारी समाज में नाम से जैनों का ही बाहुल्य है। क्योंकि उन्होंने जैनकुल में जन्म लिया है, अत: वे अपने को जैन मानते हैं। यदि ऐसे जैनों की छंटनी की जाय तो जैनों की संख्या चौथाई रह जाये। ऐसी स्थिति में जो हमारे प्रयत्न के बिना ही दि० जैन बन रहे हैं, स्वयं अपने को दि० जैन कहते और लिखते हैं, दि० जैन मंदिरों और मूर्तियों की प्रतिष्ठा कराकर पूजते हैं, उन्हें यदि हम अपना नहीं सकते तो उनका तिरस्कार तो न करें। हमें आचार्य समंतभद्र के वचन याद रखना चाहिये :—

"स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशय:।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना॥

जो घमंडी घमंड में आकर अन्य धार्मिकों का अपमान करता है, वह अपने धर्म का अपमान करता है; क्योंकि धार्मिकों के बिना धर्म नहीं होता।"

अत: जो दिगंबर जैन श्री कानजीस्वामी और उनके भक्त अनुयायियों के प्रति तिरस्कार का भाव प्रदर्शित करते हैं, वे वास्तव में अपने धर्म का तिरस्कार करते हैं।

श्री कानजीस्वामी ने दि० जैन समाज में एक वैचारिक क्रांति पैदा कर दी है। समयसार के साथ कुंदकुंद के साहित्य का बड़ा प्रचार हुआ है। श्वेतांबर संप्रदाय तक में आज अध्यात्म की हवा फैल गई है। निमित्त-उपादान, क्रमबद्धपर्याय जैसे शब्द आज जन-साधारण की चर्चा के विषय बन गये हैं। शास्त्ररस यदि नहीं है तो उनमें नहीं है जो विरोधी हैं। वैसे आज उनमें भी शिविरों की नकल चल पड़ी है। इसी तरह से यदि प्रतिदिन शास्त्रसभा भी सर्वत्र होने लगे, जैसी मुमुक्षु मंडलों में होती है, तो उससे भी लाभ ही होगा।

हमें सोनगढ़ पक्ष से ईर्ष्या नहीं, स्पर्धा करनी चाहिये; किंतु तत्त्व को गड़बड़ नहीं करना चाहिये कि जो सोनगढ़ कहता है हम उससे विपरीत कहेंगे, चाहे शास्त्र विरुद्ध ही क्यों न हो। सोनगढ़ सम्यक्त्व पर जोर देता है, सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा करता है; तो हम चारित्र के गुण गायेंगे और सम्यग्दृष्टि की बुराई करेंगे। यह तो जैनमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग तो सम्यक्त्व से प्रारंभ होता है, उसके बिना चारित्र भी कार्यकारी नहीं, यह सर्वशास्त्र-सम्मत सिद्धांत है।''

उक्त संपूर्ण कथन में पंडित श्री कैलाशचंद्रजी ने समाज की वर्तमान स्थिति पर अपने हृदय की पीड़ा व्यक्त की है। समाज को इस पर गंभीरता से विचार करना चाहिये।

हमारा आत्मार्थी बंधुओं से निवेदन है कि वे विरोधियों द्वारा किये गये किसी भी प्रकार के दुष्प्रचार से सावधान रहें। पूज्य स्वामीजी के अनुयायियों द्वारा सुनियोजित एवं सुसंगठित तत्त्वप्रचार की इस प्रक्रिया को भ्रमात्मक समाचारों द्वारा परस्पर संदेह पैदा कर विघटन कर देने के सुनियोजित इस दुश्चक्र से विशेष सावधान रहने की आवश्यकता है। इसके पूर्व भी इसप्रकार के संदेह उत्पन्न कर देनेवाले प्रयत्न हुए हैं।

शांतिप्रिय तत्त्वप्रेमी समाज से भी हमारा सानुरोध आग्रह है कि वह भी बिना स्पष्टीकरण प्राप्त किये इसप्रकार के गुमराह करनेवाले समाचारों पर विश्वास न करें।

अनेक बार इतना सब-कुछ स्पष्ट हो जाने पर भी अभी भी कुछ कलहप्रिय समाचारपत्र उसी बात को दोहराये जा रहे हैं। कहे जा रहे हैं कि कानजीस्वामी को सवस्त्र दिगंबर मुनि घोषित कर दिया गया है। नमक-मिर्च लगाकर संपादकीय लिखे जा रहे हैं और 'धर्म खतरे में हैं' का नारा देकर समाज को उत्तेजित किये जाने का सुनियोजित प्रयत्न चल रहा है। अत: और भी अधिक सावधानी की आवश्यकता है।

बुद्धिपूर्वक फैलाया गया भ्रम तो दूर होना ही था, सो वह स्पष्टीकरणों से दूर हो ही गया, साथ ही स्वामीजी की पवित्रता के साथ-साथ उनका पुण्य भी इतना प्रबल है कि उनके द्वारा हुई इस प्रभावना की उपेक्षा जिसप्रकार बुद्धिपूर्वक की गयी थी, कलहप्रिय लोगों द्वारा किये गये इस प्रचार के माध्यम से नैरोबी धर्मप्रभावना के समाचार भी घर-घर पहुँच ही गये।

'नई दुनियाँ' में अनेक बार प्रतिवादों के निकलने एवं जैन समाचार-पत्रों में तत्संबंधी चर्चा होने से उपेक्षित नैरोबी धर्मप्रभावना सहज ही बहुचर्चित हो गयी।

नैरोबी में हुई धर्मप्रभावना से उत्साहित होकर स्वामीजी का हृदय भी अनंत करुणा से आप्लावित हो चुका है। अथाह आगम की थाह पाकर जो रत्न उन्होंने पाये हैं, अनुभव की कसौटी पर कसकर उनकी प्रामाणिकता को परख; अब वे उन्हें लुटाने चल निकले हैं। विदेश के इस लंबे प्रवास के तत्काल बाद अब देश में भी उनका सौ दिन से भी अधिक का लंबा तत्त्वप्रचारार्थ प्रवास कार्यक्रम बन गया है। उनके जीवन में प्रवास का इतना लंबा कार्यक्रम कभी नहीं बना। अत: यह भी उनके इतिहास में पहली बार ही बना है। संपूर्ण तत्त्वप्रेमी समाज से अधिक से अधिक लाभ लेने का सानुरोध आग्रह है।

जब तक वे हमारे बीच हैं और अध्यात्म-रत्नाकर की गहराई में प्रवेश कर जो रत्न उन्होंने पाये हैं व उन्हें दिल खोलकर बाँट रहे हैं; तब तक आत्मार्थी बंधुओं को उनसे भरपूर लाभ ले लेना चाहिये, अन्यथा अवसर हाथ से निकल जाने पर पछताने के अतिरिक्त हाथ में कुछ न रहेगा।

जैसे सिद्ध वैसे ही संसारी

परमपूज्य दिगंबराचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की ४९वीं गाथा एवं उसमें समागत श्लोकों पर हुए पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूलगाथा इसप्रकार हैं:—

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा हु।
सव्वे सिद्धसहावा सुद्धणया संसिदी जीवा॥४९॥

यह (पूर्वोक्त) सब भाव वास्तव में व्यवहारनय का आश्रय करके (संसारी जीवों में विद्यमान) कहे गये हैं; शुद्धनय से संसार में रहनेवाले सर्वजीव सिद्धस्वभावी हैं।

जो जीव अपनी पर्याय में रहनेवाले राग-द्वेष का और अपूर्णता का यथार्थ ज्ञान नहीं करते, उन्हें शुद्धात्मद्रव्य का ज्ञान भी सच्चा नहीं हो सकता।

यह, निश्चयनय और व्यवहारनय की उपादेयता का प्रकाशन (कथन) है। प्रमाणभूतज्ञान में शुद्धात्मद्रव्य तथा उसकी पर्यायों का (दोनों का) सम्यग्ज्ञान होना चाहिये। अपने में कथंचित् विभाव पर्यायें विद्यमान हैं—ऐसा स्वीकार ही जिसे न हो, उसे शुद्धात्मद्रव्य का भी सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता। आत्मा द्रव्यदृष्टि से शुद्ध है—यह बात ठीक है; फिर भी एकसमय का राग पर्याय में बिलकुल है ही नहीं अथवा पर्याय में भी पूर्णता वर्त रही है—ऐसा माने तो पर्याय का सच्चा ज्ञान भी नहीं है; और ऐसी स्थिति में संपूर्ण द्रव्य का प्रमाणज्ञान होता नहीं। स्वभावदृष्टि से कहा जाता है कि वस्तुस्वभाव में त्याग-अत्याग है ही नहीं; परंतु इस कथन से ऐसा मान बैठे कि पर्याय में भी मुनिपना या वीतरागीपना है तो भ्रम है। बनारसीदासजी तथा उनके मित्रों ने भी सच्ची समझ के पहिले ऐसा माना था और वस्त्र उतारकर मुनिदशा होना मान लिया था। यह बात 'अर्द्धकथानक' में उन्होंने स्वयं लिखी है। जो कि इसप्रकार है:—

करनी को रस मिट गयो, भयो न आतम स्वाद।
भई बनारसी की दशा, जथा ऊँट को पाद॥

अपनी भूमिकानुसार पर्याय को समझे बिना अज्ञानी भ्रमित हो जाता है। अतः भूमिका

में वर्तती पर्याय का ज्ञान अवश्य करना चाहिये; पर्याय का विवेक करके उसमें कैसा-कैसा राग वर्तता है, उसका ज्ञान आवश्यक है और उसे कहनेवाला व्यवहारनय है। जो जीव पर्याय का ज्ञान यथार्थ नहीं करते उनका आत्मा का ज्ञान भी यथार्थ नहीं। इसलिये व्यवहारनय के विषयों का भी ज्ञान तो ग्रहण करने योग्य है—ऐसी विवक्षा से ही यहाँ व्यवहारनय को उपादेय कहा है।

जो जीव राग-द्वेष का ज्ञान करके उसका आश्रय छोड़कर शुद्धद्रव्य का आश्रय करते हैं, उनका ज्ञान प्रमाण है।

व्यवहारनय का विषय राग, पुण्य अथवा पर्याय की अपूर्णता है, उसका आश्रय ग्रहण करनेयोग्य है—ऐसी विवक्षा से व्यवहारनय को उपादेय नहीं कहा। विकार, हीनदशा, क्षयोपशमादि का ज्ञान करने से आगे बढ़ेंगे अथवा लाभ होगा—ऐसा है ही नहीं। व्यवहारनय के विषय का आश्रय छोड़नेयोग्य ही है—ऐसा समझाने के लिये ५०वीं गाथा में व्यवहारनय को स्पष्ट हेय कहा जायेगा।

जिस जीव के अभिप्राय में अपने शुद्धात्मा का आश्रय वर्तता है तथा निमित्त का, पुण्य-पाप का अथवा अपूर्ण पर्याय का आश्रय नहीं वर्तता (ज्ञान वर्तता है); उसी जीव के द्रव्य-पर्याय का ज्ञान सम्यक् है-ऐसा समझना। जिसने पुण्य, पाप, विकार, अपूर्ण पर्याय को हेय मानकर शुद्धकारणपरमात्मा को उपादेय माना है, उसका ज्ञान सम्यक्प्रमाण है—अन्य का नहीं।

संसारीजीव व्यवहारनय से शरीर के संबंधवाला है, विनाशीक है, अशुद्ध है और इंद्रिय तथा कर्म के संबंधवाला है।

पहले जो विभाव पर्यायें 'विद्यमान नहीं हैं' ऐसा प्रतिपादन करने में आया है, वे सब विभाव पर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं। गाथा ४८ में संसारीजीव को सिद्धसमान कहा था, वहाँ विभाव पर्यायें विद्यमान नहीं हैं-ऐसा कहा था, वे सब विभाव पर्यायें व्यवहारनय से एकसमयवर्ती हैं, उनका सर्वथा अभाव नहीं है, वहाँ तो द्रव्यदृष्टि से स्वरूप बताया था। इस आधार से एकसमय जितना भी विकार नहीं है-ऐसा कोई मान बैठे तो वस्तु का विरोध हो जायेगा।

वस्तुदृष्टि से जिसका निषेध किया था वह व्यवहार से एकसमय जितना है।

(१) त्रिकालीदृष्टि से संसारजीव को अशरीरी कहा था, वही जीव व्यवहारनय से शरीर के संबंधवाला है।

(२) त्रिकालीदृष्टि से संसारजीव को अविनाशी कहा था, वही जीव व्यवहारनय से विनाशीक है। नर-नारकादि पर्यायों का ग्रहण-त्याग उसके होता है।

(३) स्वभावदृष्टि से संसारजीव को अतीन्द्रिय कहा था, वही जीव व्यवहारनय से शरीरवाला है, और ज्ञान में इंद्रियों के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंधवाला है।

(४) स्वभावदृष्टि से संसारी जीव को निर्मल कहा था, वही जीव व्यवहारनय से क्षयोपशमादि विभावभाव के कारण मैलवाला है।

(५) स्वभावदृष्टि से संसारीजीव को विशुद्धात्मा कहा था, वही जीव व्यवहारनय से अशुद्ध है, राग-द्वेषरूपी भावकर्मों को निमित्तरूप से द्रव्यकर्मों के संबंधवाला है।

एकसमय जितना पर्याय में विकार है, कमी है, और कर्म तथा शरीर के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध भी है। यदि व्यवहार से भी शुद्ध और अतीन्द्रिय मान ले तो वस्तु-विरोध हो जायेगा, इसलिए एकसमयवर्ती पर्याय में व्यवहार से ऐसा विकार और कर्म के साथ संबंध है—ऐसा ज्ञान करना उचित है। जो पर्याय में विकार है उसका द्रव्य अपेक्षा से निषेध है। यदि विकार का सर्वथा अभाव ही हो तो निषेध करना रहता नहीं। अतः व्यवहार का ज्ञान करने जैसा है—परंतु आदर करनेयोग्य नहीं।

पुनः जो (व्यवहारनय के कथन से) चार विभावरूप परिणत होने से संसार में भी रहते हैं, वे सभी शुद्धनय के कथन से शुद्ध गुण-पर्यायों से सिद्धभगवंत समान हैं (अर्थात् जो जीव व्यवहारनय के कथन से औदयिकादि विभावभावों वाले होने से संसारी हैं, वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुण और शुद्धपर्यायवाले होने से सिद्ध सदृश हैं।)

व्यवहारनय से संसारीजीव पर्याय में विभावभाववाले हैं।

संसारीजीव व्यवहारनय से चार विभावभावों से परिणत हैं; इसलिये संसार में रहते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव को उपशमभाव, क्षायिकभाव प्रकट नहीं है; राग-द्वेषादि उदयभाव या क्षयोपशमभाव-ज्ञान का हीनपना है, अर्थात् यह भाव तो पर्याय में वर्तते हैं तथा उपशम और क्षायिकभाव का विचार करता है कि उपशमभाव ऐसा है और केवलज्ञान ऐसा है—इसप्रकार के विकल्प उठाता है और उन विकल्पों से लाभ मानता है; इसलिये चारों भावों से परिणत कहा है।

क्षायिकादिभाव निर्मल होने पर भी पर्याय हैं और पर्याय के लक्ष्य से राग होता है—धर्म नहीं होता; इसलिए क्षायिकभाव को विभावभाव कहा है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसमें ठहरूँ

तो लाभ हो, यह बात जमती नहीं; परंतु कुछ करूँ तो लाभ हो, व्यवहार से अथवा पुण्य से लाभ हो—ऐसी मान्यता की पकड़ को छोड़ता नहीं, विकल्प से आत्मा को लाभ होगा—ऐसा वह मानता है; इसलिये व्यवहारनय से संसारी है।

शुद्धनिश्चयनय से संसारीजीव सिद्धसमान शक्ति से परिपूर्ण और शुद्ध हैं।

वे सभी विकार के भेद पर्याय में पड़ते हैं, शुद्धदृष्टि से देखा जावे तो अभव्य सहित सभी जीव सिद्धसमान शुद्ध ही हैं। सम्यग्दर्शन का ध्येय त्रिकाली अखंड शुद्धात्मा है। शुद्धात्मा को ग्रहण करूँ और राग-द्वेष को छोड़ूँ—ऐसा अवकाश स्वभाव में नहीं है। संसार था और संसार छूटा, राग गया और वीतरागता प्रकट हुई—यह सारे भेद पर्याय के हैं, और वे व्यवहारनय के विषय हैं। जीव की पर्याय में मिथ्यादर्शन हो, भेद से लाभ मानता हो, तो भी उसका त्रिकाली शुद्धस्वभाव तो सिद्ध समान ही है; प्रथम गुणस्थान से चतुर्दश गुणस्थान तक के भेद व्यवहारनय के विषय हैं। तेरहवाँ गुणस्थान-केवलज्ञान पर्याय शुद्धस्वभाव में नहीं है, सिद्धपर्याय ग्रहण करूँ—ऐसा वस्तुस्वभाव में नहीं है। संसारीजीव की एकसमय की विकारी पर्याय को गौण करो तो सभी जीव सिद्ध सदृश हैं। निगोदिया एकेन्द्रिय हो अथवा मनुष्य पंचेन्द्रिय हो तथापि एकसमय की पर्याय को गौण करके देखें तो शुद्धदृष्टि से वे जीव सिद्धसमान हैं। ऐसी दृष्टि करना धर्म का कारण है।

व्यवहारनय का ज्ञान करके शुद्ध निश्चयस्वभाव का आश्रय करना धर्म का कारण है।

इस गाथा में पर्याय का ज्ञान कराया और बताया कि यद्यपि पर्याय में विभावभाव है, तथापि उसे गौण करके देखो तो स्वभाव में विभावभाव नहीं है—इसप्रकार यथार्थ ज्ञान करे तो ज्ञानप्रमाण होता है। जैसे तिल में तेल शक्तिरूप से है—ऐसा भान न करे, तो तिल पेरने का भाव ही नहीं आ सकता; तथा तिल में तेल शक्तिरूप से है—ऐसा कहा हो, वहाँ पर्याय में भी तेल है—ऐसा मानकर पूड़ी सेकने लगे तो निराशा ही होगी। वैसे ही आत्मा स्वभाव से शुद्ध है ऐसा विचार न करे तो शुद्ध के लक्ष्य बिना अशुद्धता टले नहीं; और शक्ति से शुद्ध कहा इसलिए पर्याय में भी शुद्धता है—ऐसा मान ले तो भी भूल है।

पर्याय में विकार है, कर्म का निमित्त है, शुभभाव करे उसमें देव-गुरु का निमित्त है, इसप्रकार पर्याय का यथार्थ ज्ञान करना चाहिये। साथ ही वह अधूरी दशा मेरा वास्तविक

स्वरूप नहीं, मैं तो आनंदकंद शक्तिवान हूँ, मेरे में कारणशक्ति है, वह प्रकट होकर कार्यरूप दशा प्राप्त होगी—ऐसा मानना योग्य है। सभी जीव स्वभाव से जिनवर समान हैं, ऐसा कथन आवे वहाँ पर्याय में जिनवरपना है—ऐसा नहीं मानना चाहिये।

अतः पर्याय का यथार्थ ज्ञान करके, विकार मेरे स्वभाव में नहीं है—इसप्रकार शुद्धस्वभाव का आश्रय लेना चाहिये तभी ज्ञान प्रमाण होगा। व्यवहार का ज्ञान करनेयोग्य है, किंतु व्यवहार का आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आश्रय तो निश्चयस्वभाव का ही करना योग्य है।

इस गाथा में व्यवहारनय से ज्ञान कराकर पीछे से कहा कि वे सब विभाव विद्यमान होने पर भी शुद्धदृष्टि से सब जीव सिद्ध सदृश हैं। इसप्रकार यथार्थ ज्ञान करके निश्चयस्वभाव का आश्रय करना वही धर्म का कारण है।

इसीप्रकार आचार्य अमृतचंद्रदेव ने समयसार की आत्मख्याति टीका में पाँचवें श्लोक द्वारा कहा है:—

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहितपदानां हंत हस्तावलंबः।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं
परविरहितमंतः पश्यतां नैष किंचित्॥५॥

यद्यपि व्यवहारनय इस प्रथम भूमिका में जिन्होंने अपना पग रखा है ऐसे जीवों को, अरेरे! हस्तावलंबनरूप भले हो; तथापि जो जीव चैतन्यचमत्कारमात्र, पर से रहित—ऐसे परमपदार्थ को अंतरंग में देखते हैं, उनको यह व्यवहारनय कुछ भी नहीं है।

धर्मी जीव को विकल्पात्मक दशा में व्यवहारनय का अवलंबन उपचार से कहा जाता है, किंतु उसका फल संसार है।

प्रथम भूमिका में अर्थात् निर्विकल्प दशा में स्थिर न हो सके उससे प्रथम जीव को विकल्प उठते हैं और व्यवहारनय का विषय ध्यान में आता है, मुनि को भी छठे गुणस्थान में उपदेशादि का विकल्प आता है और उस विकल्प का मुनि ज्ञान कराते हैं। दृष्टि में उस विकल्प और भेद का निषेध है, दृष्टि में तो अभेद स्वभाव ही है; तथापि जब तक अपने स्वभाव में ठहर नहीं सकते तब तक अस्थिरता रहती है। ऐसे चौथे, पाँचवें, छठे गुणस्थानवाले जीवों को व्यवहारनय हस्तावलंबनरूप कहा है, तो भी उसका फल संसार है।

समयसार गाथा ११ के भावार्थ में लिखा है:—

जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलंब जानकर बहुत किया है, परंतु उसका फल संसार ही है; शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं और उसका उपदेश भी विरल है—कहीं-कहीं है। इसप्रकार समयसार में भी व्यवहारनय के आश्रय का फल संसार कहा है।

मिथ्यादृष्टि के व्यवहारनय होता नहीं, ज्ञानी के ही नय होते हैं। ज्ञानी जब आत्मा का स्वरूप अज्ञानी को गुण-गुणीभेद से समझाता है तब विकल्प वर्तता है। उसकी दृष्टि में अखंड स्वभाव आदरणीय है, वह राग और भेद से कल्याण मानता नहीं, उपदेश की वृत्ति उठती है, उसका भी खेद होता है। अरे रे! हम अपने स्वभाव में ठहर नहीं सकते, इसलिये यह विकल्प आते हैं, किंतु उनसे कभी लाभ मानता नहीं।

मिथ्यादृष्टि जीव कहता है कि प्रथम व्यवहार होता है और बाद में उससे निश्चय प्रकट होता है, परंतु ऐसा वस्तुस्वरूप तो है नहीं। जिसको निश्चय प्रकट हुआ हो उसको ही व्यवहार सच्चा होता है। उस जीव को विकल्प होने पर देव-शास्त्र-गुरु पर लक्ष्य जाता है। उस पर्याय का ज्ञान तथा त्रिकालीद्रव्य का ज्ञान—इसप्रकार दोनों का ज्ञान होकर ज्ञान प्रमाण होता है, किंतु किसी भी दशा में पर्याय का आश्रय करना उचित नहीं है।

'परमअध्यात्मतरंगिणी' की टीका में पंडित गजाधरलालजी भी कहते हैं:—

''तथा भट्टारक शुभचंद्रजी ने 'हंत इति वाक्यालंकारे'—ऐसा कहकर हंत अव्यय का प्रयोग वाक्य की सुंदरता के लिये बतलाया है। परंतु पंडित जयचंद्रजी छाबड़ा ने हंत अव्यय का अर्थ 'खेद' किया है। हम पंडित जयचंद्रजी के अर्थ से सहमत हैं, क्योंकि व्यवहारनय को हेय माना है। इसलिये हंत शब्द से ग्रंथकार ने यहाँ खेद प्रकट किया है कि शुद्धस्वरूप की प्राप्ति के पहले उसकी प्राप्ति के लिये हमें जबरन व्यवहारनय का अवलंबन करना पड़ता है। यदि हमारा वश चलता अर्थात् बिना व्यवहार का अवलंबन किये ही शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति हो जाती तो हम व्यवहारनय की ओर झांक कर भी न देखते।''

यहाँ हस्तावलंबरूप कहा है अर्थात् टेकारूप कहा है। इसका अर्थ यह है कि चलनेवाला स्वयं है, दूसरा जीव चलाता नहीं है। उदयादि चार भावों के आश्रय से भी लाभ नहीं है, किंतु अपने शुद्धस्वभाव के आश्रय से ही लाभ है। ऐसे अपने अवलंबन से जो चलते हैं, उनको अपूर्ण दशा में राग जाननेयोग्य है—इस कथन को हस्तावलंबरूप कहा है। भूतार्थ

स्वभाव को दृष्टि में रखते हुए अर्थात् उसका आश्रय लेते हुए पर्याय का ज्ञान करना उचित है।

जो जीव अपने शुद्धस्वभाव में ठहर गये हैं, उन्हें विकार के जानने का भी व्यवहार नहीं होता।

विकल्पवाली दशा में व्यवहार का ज्ञान कराया और शास्त्र में वहाँ भले ही हस्तावलंबरूप कहा तो भी जो जीव राग और विकार टालकर अपने स्वभाव में ठहर जाते हैं और निजशुद्ध-चैतन्यचमत्कारमात्र को देखते हैं, उनको व्यवहारनय कुछ भी प्रयोजनवान नहीं है। ऐसे जीव को विकल्प होता ही नहीं है, क्षायिकभाव ऐसा प्रकट होगा—इसप्रकार का विकल्प भी वहाँ नहीं है। अपनी शुद्धता में स्थिर होते ही विकल्प टूट गया, अत: विकल्प को जाननेरूप व्यवहार भी नहीं रहता, अत: व्यवहारनय कुछ भी नहीं—ऐसा कहा है।

अब ४९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—

''शुद्धनिश्चयनयेन विमुक्तौ, संसृतावपि च नास्ति विशेष:।
एवमेव खलु तत्त्वविचारे, शुद्धतत्त्वरसिका: प्रवदन्ति॥७३॥

शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति और संसार में अंतर नहीं है—ऐसा ही वास्तव में तत्त्व विचारने पर (परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण करने पर) शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं॥७३॥''

शुद्धनिश्चयनय से संसारी और सिद्ध में कोई अंतर नहीं, दोनों समान हैं।

संसारी जीवों की एकसमय की पर्याय को तथा सिद्ध की मुक्ति की पर्याय को गौण करके देखें तो शुद्धनिश्चयनय से संसारी और सिद्ध में कोई भेद नहीं है। कोई ऐसा माने कि एकसमय की पर्याय सर्वथा है ही नहीं और आत्मा कूटस्थ ही है तो यह बात खोटी है। पर्याय में भेद पड़ता है, जुदा-जुदा भाव जीव करता है, निमित्त के ऊपर लक्ष्य भी जाता है। यह सारे भेद पर्याय में हैं अवश्य, किंतु इन भेदों से स्वभाव को लाभ नहीं है। अत: स्वभावदृष्टि कराने के लिये कहा है कि वस्तुस्वरूप का विचार करने पर संसारी और सिद्ध में कोई अंतर नहीं है—ऐसा शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।

(१) शुद्धस्वभाव एकरूप है उसमें भेद नहीं है—ऐसा मानकर कोई अज्ञानी जीव कहे कि व्यवहार में भी कोई भेद नहीं है तो उसका एक भी नय सच्चा नहीं रहता। चौथे, पाँचवें, छठे

गुणस्थान में जीव को सविकल्प दशा में राग होता है और निमित्त पर लक्ष्य जाता है—वह सब ज्ञान करने के लिये है।

(२) तथा कोई जीव ऐसा माने कि व्यवहार में राग-द्वेषादि के भेद हैं, इसलिये निश्चयस्वभाव में भी भेद पड़ते हैं और निश्चयनय के अभेद विषय में भी भेद पड़ते हैं तो यह भी खोटी मान्यता है, उसे भी कोई नय नहीं है। व्यवहार से पर्याय में भेद होने पर भी निश्चय में भेद नहीं है—ऐसा अनेकांत है। संसारजीव सिद्ध समान हैं—ऐसा कहकर पर्यायदृष्टि हटाकर द्रव्यदृष्टि करानी है, क्योंकि विकारी पर्याय अथवा अपूर्ण पर्याय में से धर्म पर्याय प्रकट होती नहीं, वह तो शुद्धस्वभाव के आधार से ही प्रकट होती है।

आत्मधर्म के स्वामित्व का विवरण

फार्म नं० ४, नियम नं० ८

समाचार पत्र का नाम	:	आत्मधर्म (हिन्दी)
प्रकाशन का स्थान	:	ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी	:	श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ (सौराष्ट्र, गुजरात)
संपादक	:	डॉ० हुकमचंद भारिल्ल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
मुद्रक	:	जयपुर प्रिंटर्स, मिर्जा इस्माइल रोड, जयपुर ३०२००१

मैं, डॉ० हुकमचंद भारिल्ल, एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं। **– डॉ० हुकमचंद भारिल्ल**

संपादक

ज्ञान ही प्रत्याख्यान है

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज 'समयसार' की पैंतीसवीं गाथा तथा उसमें समागत उनतीसवें कलश पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है:—

जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणं ति जाणिदुं चयदि।
तह सव्वे परभावे णाऊण विमुंचदे णाणी॥३५॥

जिसप्रकार लोक में कोई पुरुष परवस्तु को 'यह परद्रव्य है'—ऐसा जानकर छोड़ देता है; उसीप्रकार ज्ञानी समस्त परभावों को 'पर' जानकर छोड़ देता है।

अब ३५वीं गाथा में आचार्यदेव ज्ञान ही प्रत्याख्यान है—यह बात उदाहरणपूर्वक समझाते हैं।

चौतीसवीं गाथा में आचार्यदेव ने ज्ञान को ही प्रत्याख्यान सिद्ध किया था। अब इसी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिये उदाहरण देकर समझाते हैं।

किसी पुरुष ने धोबी के यहाँ चादर धोने को दी, किंतु वहाँ से अपनी चादर लाने के बदले भ्रम से किसी दूसरे की चादर ले आया और उसे ओढ़कर सो गया। तब दूसरा व्यक्ति आकर उस चादर को छोर पकड़कर खींचता हुआ बारंबार कहता है कि —'भाई, तू जाग! सावधान हो। मेरा वस्त्र तेरे पास बदलकर आ गया है—मुझे दे दे।' उस व्यक्ति द्वारा बारंबार सावधान किये जाने पर वह पुरुष सर्व चिह्नों से उस चादर की भलीभाँति परीक्षा करके 'यह चादर अवश्य ही दूसरे की है'—ऐसा जानकर शीघ्र ही उस चादर को त्याग देता है।

इस उदाहरण में नीतिवान पुरुष के माध्यम से प्रत्याख्यान का स्वरूप समझाया गया है। यह पुरुष चादर के मालिक की बात बार-बार सुनकर झुंझलाता नहीं है, क्रोध नहीं करता है कि—तू ऐसा क्यों कर रहा है? बिना पूछे मेरी चादर क्यों खींच रहा है? लौकिक अपेक्षा से भी यह पुरुष नीतिवान है—इसलिये सामनेवाले की बात सुनकर विचार करता है कि—यह व्यक्ति बार-बार कह रहा है और जोर से कह रहा है, तब इसकी बात पर विचार करना चाहिये।

इसप्रकार नीति को अपनाते हुए वह पुरुष सभी चिह्नों से उस चादर की परीक्षा करता है तथा 'वास्तव में यह चादर मेरी नहीं है, इसी व्यक्ति की ही है'—ऐसा निर्णय करके वह चादर त्याग देता है अर्थात् उस व्यक्ति को दे देता है। वह पुरुष इतना भी नहीं कहता कि पहले मेरी चादर लाकर दो तब मैं तुम्हारी चादर वापिस करूँगा। इसप्रकार नीतिवान अर्थात् पात्र अज्ञानी पुरुष के उदाहरण से प्रत्याख्यान का स्वरूप समझाया है।

उक्त दृष्टांतानुसार आत्मा भी अनादि काल से परद्रव्यों के भावों को ग्रहण करके अर्थात् उन्हें अपना जानकर तथा अपने में एकरूप अनुभव करके स्वयं ही अज्ञानी हो रहा है। श्रीगुरु परभाव का विवेक करके उसे आत्मस्वभाव का ज्ञान कराते हुए कहते हैं कि—'तू शीघ्र जाग! सावधान हो!! तेरी आत्मा वास्तव में ज्ञानमात्र ही है'—इस आगमवाक्य को बारंबार सुनता हुआ वह अज्ञानी जीव समस्त चिह्नों से भलीभाँति परीक्षा करके 'मैं ज्ञानस्वरूप ही हूँ, ये रागादि भाव परभाव हैं'—ऐसा जानकर ज्ञानी होता हुआ समस्त परभावों को तत्काल छोड़ देता है।

आत्मा ज्ञानस्वभावी है, तथा शरीर जड़ है, और शुभाशुभभाव विकार हैं। परंतु यह जीव अपने ज्ञातादृष्टा-स्वभाव को भूलकर अपने को स्त्री-पुरुष, काला-गोरा, दुबला-मोटा आदि रूप अनुभव करता है तथा यह स्त्री-पुत्र-मकान आदि मेरे हैं, इनकी व्यवस्था मैं कर सकता हूँ—ऐसी अनेक प्रकार की मिथ्या मान्यताएँ करके स्वयं अज्ञानी हो रहा है।

जितने क्षेत्र में आत्मा है, उतने ही क्षेत्र में विकार है। विकार आत्मा की ही पर्याय है, वह आत्मा के असंख्यप्रदेशों में ही होता है, परंतु वह आत्मा का मूलस्वभाव नहीं है, और अज्ञानी अपने को विकाररूप ही अनुभव करता है। इसप्रकार यह आत्मा विकार की चादर ओढ़कर सो रहा है। विकार आत्मा के त्रिकाली अस्तित्व में नहीं है, इसलिये अपने को विकाररूप अनुभव करना भ्रम है। शुभाशुभ भाव परपदार्थों के आश्रय से होते हैं, इसलिये आत्मा की पर्याय में उत्पन्न होने पर भी वे परभाव हैं। फिर भी अज्ञानी उन्हें अपना मानता हुआ भ्रम की चादर ओढ़कर सो रहा है। यह भ्रमरूपी चादर किसी कर्म के कारण नहीं है, अपितु स्वयं अपनी अज्ञानता से ही ओढ़ी है।

श्रीगुरु करुणा करके यह भ्रमरूपी चादर हटाने की प्रेरणा देते हैं। अज्ञानी की जागृति के समय गुरु की उपस्थिति होती है। गुरु के निमित्त बिना जागृति नहीं होती और शिष्य जब जागृत होता है, तब उस समय गुरु उपस्थित होते ही हैं।

शिष्य को सावधान करते हुए गुरु समझाते हैं कि—''आत्मा ज्ञानमात्र है, ज्ञान में जो रागादि भाव प्रतिभासित होते हैं, वे आत्मा का स्वभाव नहीं हैं, वे सब परभाव हैं, दुखरूप हैं, इसलिये दूर करने योग्य हैं। अविकारी स्वभाव और विकार का मेल नहीं बैठ सकता। चैतन्यज्योति आत्मा में संयोगजनित विकार प्रविष्ट नहीं हो सकते। इसलिये हे शिष्य तू जाग! विकार से भिन्न ज्ञानस्वभाव का अनुभव कर!! आत्मा ज्ञानमात्र ही हो—ऐसा नहीं है; ज्ञानमात्र आत्मा में अनंत शक्तियाँ समाई हैं। ज्ञान तो आत्मा का असाधारण लक्षण है—इसलिये उसकी मुख्यता से आत्मा को ज्ञानमात्र कहा जाता है।''

इसप्रकार शिष्य को गुरु बारंबार समझाते हैं। शिष्य भी इतना पात्र है कि बारंबार सुनकर उसे अरुचि नहीं होती कि क्या आत्मा-आत्मा लगा रखा है? उसमें गुरु की देशना झेलकर तद्रूप परिणमित होने की पात्रता है। इसप्रकार यहाँ निमित्त-उपादान की संधि बतायी है।

गुरु के मुख से बारंबार भेदज्ञान की बात सुनकर शिष्य स्वयं परीक्षा करता है। वह जिज्ञासापूर्वक गुरु का उपदेश सुनकर स्वभाव और विकार की तथा जड़ और चेतन की अपने-अपने लक्षणों से भलीभाँति परीक्षा करता है कि—''अशुभराग तो मेरा स्वभाव है ही नहीं, परंतु शुभराग भी मेरा स्वभाव नहीं है। मैं तो राग से भिन्न ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ। मैं निराकुल, अतीन्द्रिय, आनंदस्वरूप हूँ तथा रागादिभाव आकुलतारूप हैं।'' इसप्रकार देह और राग से भिन्न आत्मा को जानकर उसमें लीन होना ही सच्चा प्रत्याख्यान है।

श्रीगुरु परभावों से भेदज्ञान कराते हुए उनका लक्ष्य छोड़कर आत्मा में स्थिरता की प्रेरणा देकर शिष्य को आत्म-भावरूप करते हैं। गुरु तो निमित्तमात्र हैं, शिष्य स्वयं अपनी योगयता से रागादि भावों का लक्ष्य छोड़कर आत्मा में लीन होता हुआ आत्म-भावरूप होता है। पहले रागादि में एकताबुद्धि थी, इसलिये रागादि-भावरूप परिणमित होता था, परंतु अब राग और आत्मा का भेदज्ञान करके आत्मा में एकत्वरूप अनुभूति की, इसलिये आत्म-भावरूप होता है।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान बिना सच्चा प्रत्याख्यान नहीं होता, क्योंकि राग से भिन्न आत्मा की अनुभूति बिना स्थिरता किस में होगी? और आत्मा में स्थिरता बिना सच्चा प्रत्याख्यान कैसे होगा?

बाह्य व्रतादिरूप शुभभाव सच्चा प्रत्याख्यान नहीं है। सम्यग्दर्शन बिना मात्र शुभभाव

करने से किंचित् पुण्य-बंध तो होता है, परंतु उस शुभभाव को ही सच्चा प्रत्याख्यान समझनेरूप मिथ्या मान्यता से मिथ्यात्वरूपी महापाप का बंध भी होता है। विकार से आत्मा को लाभ माननेवाला अविकारी आत्मा का अनादर करता है। आत्मा स्वयं अनंत गुणों का अखंड पिंड है, उसके आश्रय से ही आत्मा सुखी हो सकता है; परंतु अपने स्वभाव की महिमा न करके शुभभाव की रुचि करने से यह जीव दुःखी हो रहा है।

आजकल जो शुभभाव होते हैं, वे तो बहुत ही स्थूल हैं। पूर्व में जीव ने जैसे उच्चकोटि के शुभभाव किये हैं, वैसे भाव करने की तो इस समय भरतक्षेत्र में किसी की शक्ति भी नहीं है। कषाय की उत्कृष्ट मंदता करके यह जीव पूर्व में अनंतबार नग्न-दिगंबर मुनि हुआ; सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की बाह्य श्रद्धा की; षट्काय की ऐसी दया पालन की कि हरियाली के एक पत्ते की भी विराधना न हो; ऐसी क्षमा धारण की कि कोई चमड़ी उतारकर उसमें नमक छिड़के तो भी क्रोध न हो; ऐसा ब्रह्मचर्य पालन किया कि स्वर्ग से इंद्राणी डिगाने आये तो भी न डिगे।

इसप्रकार यह जीव ऐसे अनेक शुभभाव करके अनंतबार नववें ग्रैवेयक गया, किंतु जन्ममरण का अंत नहीं आया, क्योंकि राग से भिन्न आत्मा की श्रद्धा नहीं की और राग से ही लाभ माना। मन-वचन-काय की क्रिया और राग को लाभदायक मानना अनंत संसार का कारण है। इसलिये आत्मा के अनुभव बिना कितने ही शुभभाव करे, उससे थोड़े समय के लिये स्वर्गादि में भले चला जाये, परंतु भव का अंत नहीं आता।

शुभभाव से आत्मा को किंचित् भी लाभ नहीं है—इसका यह अर्थ नहीं है कि दया, दान, भक्ति आदि शुभ परिणामों को छोड़कर विषय-कषाय, काम-क्रोधादि अशुभ परिणाम करने लगे। जब शुभभाव से आत्मा को लाभ नहीं है, तो अशुभभाव से कैसे हो सकता है? अशुभ से तो नरकादि कुगतियों के घोर दुःख सहने पड़ते हैं। यहाँ अशुभ के पोषण की बात नहीं है, किंतु आत्मा का हित कैसे होगा—यह समझाया जा रहा है।

प्रश्न :- शुभभावों से आत्महित में सरलता तो होती है?

उत्तर :- सत्समागम से तत्त्व का यथार्थ निर्णय करने से आत्महित में सरलता होती है। सत्संग, स्वाध्याय आदि के शुभभाव आत्मार्थी को आते अवश्य हैं, परंतु मात्र इन शुभभावों से आत्महित का मार्ग सरल नहीं होता; लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार नहीं आती। आत्म का हित तो तत्त्वनिर्णय से होता है, मात्र शुभभाव से नहीं।

यह जीव जब तक परवस्तु को अपना मानता है—तब तक उसमें ममत्व होता है, लेकिन जब उसे 'पर' जान लेता है, तब तत्काल उससे ममत्व छूट जाता है—यही सच्चा प्रत्याख्यान है। अपने अनंत गुणों की संपत्ति की महिमा आने पर रागादि की महिमा स्वयं छूट जाती है। इसलिये आचार्यदेव ने परपदार्थों और परभावों को 'पर' जानकर उनके छूटनेरूप प्रत्याख्यान को दूसरे की चादर को अपनी माननेवाले पुरुष का उदाहरण देकर समझाया है।

अब आचार्यदेव उनतीसवें कलश में इसी अर्थ को स्पष्ट करते हैं:—

अवतरित न यावद् वृत्तिमत्यंतवेगादनवमपरभावत्यागदृष्टांतदृष्टिः।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥२९॥

यह परभाव के त्याग के दृष्टांत की दृष्टि पुरानी न हो—इसप्रकार अत्यंत वेग से जब तक प्रवृत्ति को प्राप्त न हो, उससे पूर्व ही तत्काल सकल अन्य भावों से रहित यह अनुभूति स्वयं ही प्रगट हो जाती है।

दूसरे पुरुष की चादर को अपनी मानकर सोनेवाले पुरुष ने श्रीगुरु द्वारा बारंबार समझाये जाने पर उस चादर की भलीभाँति परीक्षा करके उसे दूसरे की जानकर तत्काल छोड़ दिया—परभाव के त्याग के दृष्टांत की यह दृष्टि जब तक पुरानी न हो अर्थात् नयी की नयी बनी रहे, इसके पूर्व ही मैं समस्त परभावों से रहित हूँ—ऐसी अनुभूति स्वयं प्रगट हो जाती है।

लोक में भी ऐसा कहा जाता है कि आप आये नहीं और मेरा काम हो गया, तथा इसका अर्थ भी यही समझा जाता है कि आपके आते ही तुरंत मेरा काम हो गया। इसीप्रकार 'रागादि परभाव तेरे चैतन्य स्वभाव से भिन्न हैं'—ऐसा संतों ने कहा नहीं; उससे पहले ही शिष्य को आत्मानुभूति प्रगट हो गई अर्थात् श्रीगुरु का उपदेश सुनते ही तुरंत तद्नुसार परिणमित होकर भेदज्ञान प्रगट हो गया।

देखो! श्रीगुरु की वाणी में भी राग से भिन्न आत्मा के आश्रय की प्रेरणा है। जो राग से लाभ होना बताये वह सच्चे गुरु की वाणी नहीं हो सकती। श्रीगुरु स्वयं अतीन्द्रिय आनंद की मस्ती में झूलते हैं और शिष्य को भी यही समझाते हैं कि—"तू ज्ञानानंदस्वभावी है, अज्ञान से पुण्य-पाप की चादर को अपनी मानकर सो रहा है। ये रागादि भाव मोहकर्म के भाव्य हैं—ज्ञायक के भाव्य नहीं। इसलिये अपने को रागादि परभावों से भिन्न चैतन्यभावरूप अनुभव कर।"

इसप्रकार श्रीगुरु की वाणी सुनते ही उसीसमय शिष्य को अनुभूति प्रगट हो जाती है। श्रीगुरु की देशना पुरानी नहीं पड़ती और शिष्य आत्मानुभवरूप परिणमित हो जाता है, विकाररूप परिणमित नहीं होता।

श्रीगुरु का उपदेश सुनते ही आत्मानुभूति प्रगट हो जाती है अर्थात् सुनने से नहीं होती। वाणी सुनने का और अनुभव होने का एक ही काल है। उस समय आत्मानुभूति अपने अंतर्मुख पुरुषार्थ से होती है। वाणी के कारण आत्मानुभूति हुई–ऐसा नहीं है।

किसी वस्तु को 'पर' (अपने से भिन्न) जान लेने पर उससे ममत्व नहीं रहता। अतः रागादि को परभावरूप जानते ही उनसे ममत्व छूट जाता है और यही सच्चा प्रत्याख्यान है।

इसप्रकार यहाँ आचार्यदेव ने 'ज्ञान ही प्रत्याख्यान है'—यह महान सिद्धांत उदाहरण देते हुए समझाया है।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

[गतांक से आगे]

अब निश्चयकाल के रहने का क्षेत्र तथा संख्या का प्रतिपादन करते हैं:—

लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू असंखदव्वाणि॥२२॥

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रत्नों की राशि की भाँति भिन्न-भिन्न रूप से एक-एक कालाणु स्थित है और वे असंख्य हैं।

लोकाकाश के एक प्रदेश पर एक ही कालाणु रहता है तथा एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में

नहीं जाता है। रत्नों के ढ़ेर में जिसप्रकार रत्न अलग-अलग रहते हैं; उसीप्रकार लोकाकाश के असंख्य प्रदेशों में असंख्य कालाणु अलग-अलग ही रहते हैं।

वाच्य पदार्थ के अभाव में वाचक शब्द नहीं होता है। इसलिये 'काल' वाचक शब्द के होने पर उसका वाच्य पदार्थ 'कालद्रव्य' भी होना चाहिये। जो यह कहते हैं कि कालद्रव्य नहीं है, उनसे पूछना चाहिये कि 'काल' इस वाचक शब्द के अस्तित्व का क्या कारण है ?

'गुड़' वाचक शब्द के होने पर भी यदि उसका वाच्य 'गुड़' पदार्थ नहीं माना जाये तो 'गुड़' इस वाचक शब्द का अस्तित्व भी निरर्थक हो जायेगा। अतः 'गुड़' इस वाचक शब्द के होने पर वाच्य पदार्थ 'गुड़' भी अवश्य होता ही है।

काल यह दो अक्षर का पद है। सत्पद प्ररूपणा अर्थात् होनेवाले पदार्थ को बतानेवाले पद का कथन। इसके अनुसार वाचक 'काल' शब्द होने पर उसका वाच्य पदार्थ भी सत्‌रूप होना चाहिये। ज्ञान का विषय होने से काल पदार्थ सत् है। ज्ञान उसे जानता है, यदि नहीं जाने तो ज्ञान अप्रामाणिक (खोटा) ठहरता है।

हमारे माता-पिता कितनी संपत्ति छोड़ गये हैं-इसका ध्यान जीव प्रति समय रखता है, बहीखातों में खोजता भी है कि और कहाँ-कहाँ मेरी संपत्ति है। यह सब संपत्ति के प्रति रुचि का परिणाम है।

आचार्य परमात्मा कहते हैं कि भाई! यहाँ (धर्म में) भी अत्यंत रुचि होना चाहिये। धर्मपिता सर्वज्ञ-परमात्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि रत्नत्रयरूप अमूल्य संपत्ति छोड़ गये हैं। हमें निरंतर 'उनकी वाणी में क्या-क्या आता है ?'—इसका ज्ञान करना चाहिये। परपदार्थों से और विकारी भावों से भी रहित अपनी आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणतापूर्वक केवलज्ञान होता है, तत्पश्चात् मोक्ष होता है। भगवान भी इसीप्रकार मुक्त हुये हैं। संपूर्ण लोकालोक को युगपद स्पष्ट जाननेवाले केवली भगवान की वाणी में आया है कि द्रव्य जाति अपेक्षा छह हैं। वे जितने हैं, उतने ही जाने तो ज्ञान सत्य हो।

जिसप्रकार 'जीव' वाचक शब्द है तो वाच्य पदार्थ 'जीव' भी होना चाहिये, क्योंकि 'जीव' शब्द में 'जीव' पदार्थ नहीं है, अपितु 'जीव' शब्द ज्ञानादिस्वभाव के धारक 'जीव' पदार्थ को बताता है; उसीप्रकार धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य आदि शब्द हैं, वे भी अपने-अपने स्वभाव के धारक पदार्थों को बताते हैं, ऐसा वाचक-वाच्य संबंध स्वतंत्र है।

अत: 'काल' शब्द 'काल' नामक पदार्थ को बताता है। इसप्रकार कालद्रव्य का निश्चय हुआ।

अब कालद्रव्य की सिद्धि दृष्टांतपूर्वक करते हैं।

यह अंगुली टेढ़ी हुई तो जिस समय टेढ़ी अवस्था का उत्पाद हुआ उसी समय सीधी अवस्था का व्यय हुआ और अंगुली ध्रुव रही। तीनों अवस्थायें एक साथ हैं। सोने की कुंडल पर्याय का उत्पाद, कड़ा पर्याय का व्यय, और सोने का ध्रुव रहना; जीव की मनुष्य पर्याय का उत्पाद, देव पर्याय का व्यय और जीवपने का ध्रुव रहना—इसप्रकार तीनों ही अवस्थायें एकसमय में एक साथ होती हैं। इससे कालद्रव्य की सिद्धि होती है, ऐसा ज्ञान करना चाहिये।

व्यापारी अपने बहीखातों का ज्ञान अच्छी तरह रखता है, क्योंकि उसमें उसकी रुचि है। रुपया, पैसा मिलना या न मिलना पुण्याधीन है। तथा पुण्योदय से प्राप्त पैसा भी जीव के साथ रहनेवाला नहीं है। यह पैसा मुझे मिला, ऐसी ममता जीव करता है; वही उसकी आत्मशक्ति को लूट रही है। ममता के बिना मैं त्रिकाली ज्ञानस्वभावी हूँ, जगत के समस्त परपदार्थ मुझे लाभदायक अथवा नुकसानदायक नहीं हैं—इसप्रकार जगत का ज्ञान करके अपने ज्ञानस्वभाव का माहात्म्य लाना ही धर्म है। सर्वज्ञ भगवान द्वारा कथित इसी आगम में बहुत पदार्थों का वर्णन मिलता है, उसका पठन-पाठन करना चाहिये।

केवलज्ञान पर्याय का उत्पाद तथा उसके कारणभूत निर्विकल्प ध्यान का व्यय और उन दोनों के आधारभूत परमात्मद्रव्यरूप जीव ध्रुव है। इसी का विस्तार इसप्रकार है:—

आत्मा ज्ञानानंदस्वभावी है, राग-द्वेष परिणति विकार है। अल्पज्ञता आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं है, मैं स्वयं निजस्वभाव में एकाग्र होऊँ तो केवलज्ञान प्रगट हो—ऐसा आत्मा का स्वरूप है।

सर्वप्रथम ऐसा ज्ञान करना चाहिये कि शरीर, मन, वाणी एकक्षेत्र में रहते हुये भी पुद्गल हैं; रुपया, पैसा, कुटुंबीजन पृथक् हैं—उनका रहना अथवा जाना मेरे (जीव के) हाथ में नहीं है। यदि जीव के हाथ की बात हो तो वह रुपया-पैसा जाने ही न दे, कुटुंबीजनों को मरने ही न दे, परंतु ऐसा नहीं होता है।

भाई! जीव ममता करे अथवा ममतारहित आत्मा की श्रद्धा करे; दोनों ही दशाओं में जीव 'पर' से पृथक् है, परंतु ममता से पृथक् नहीं है। स्वयं-स्वयं की भूल से ममता करता है, कोई उसे ममता नहीं कराता है—ऐसा ज्ञान करने के बाद ममता अनित्य है और ज्ञानस्वभावी

आत्मा नित्य है, ममतारहित है। इसप्रकार आत्मश्रद्धान और ज्ञानपूर्वक ममता घटाई जा सकती है।

ममता का अभाव करे अर्थात् आत्मा का यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान और लीनता करे तो वीतरागतापूर्वक केवलज्ञान प्रगट होता है, उसीसमय ध्यान का नाश होता है। कैसा है ध्यान? निर्विकल्प और केवलज्ञान की प्रगटता में कारण है। अपने ज्ञानानंदस्वभाव से हटकर शरीर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, मैं पुण्यपाप करता हूँ, ऐसी वासना की गंध ही विकार है और मूढ़जनों का ध्यान है। अज्ञानी जीव बाहर में आनंद मानते हैं। जगत की क्रिया जगत के कारण होती है, परंतु अज्ञानी को यह बात जँचती नहीं है।

धर्मी जीव विचार करता है कि संयोग मेरे से भिन्न हैं, उनका परिणमन अर्थात् क्रिया उनसे ही होती है, मैं तो जाननेवाला हूँ तथा मुझमें मेरी भूल से ही राग-द्वेष होते हैं, वे दुखदायक हैं। विकाररहित शुद्ध स्वभाव का श्रद्धान-ज्ञान करना सुखदायक है। इसप्रकार सत्स्वभाव की रुचि होने से विकार की रुचि टूट जाती है, तथा स्वभाव में विशेष स्थिरता होने से निर्विकल्प ध्यान होता है। संसार की दृष्टिवाले दुनियाँ के जीव ममता में पड़े हैं। परंतु यहाँ आचार्य कहते हैं कि तेरा स्वरूप तो सच्चिदानंदमय है। सत् अर्थात् स्थिर रहनेवाला चित् अर्थात् ज्ञान और आनंद (आह्लाद) मेरा स्थायी स्वभाव है—ऐसा धर्मी का विचार होता है।

शरीर, रुपया-पैसा यहीं पड़ा रहेगा—वह मेरा नहीं है, पर्याय कल्पना भी व्याधि है, कल्पनारहित ज्ञान और आनंद ही मेरा स्वरूप है; ऐसी दृढ़ प्रतीतिपूर्वक स्वरूप-स्थिरता से निर्विकल्प ध्यान होता है; वही मोक्षमार्ग है तथा केवलज्ञान और मुक्ति का कारण है। मोक्षमार्ग अर्थात् ध्यानरूपी वीतरागी पर्याय का नाश, केवलज्ञान की उत्पत्ति, और आत्मा की ध्रुवता—ये तीनों एक साथ हैं। केवलज्ञान का उत्पाद और निर्विकल्प ध्यान का व्यय दोनों का आधार ध्रुव जीवपदार्थ ही है।

सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं कि सबसे पहले यह निर्णय कर कि यही सत्यमार्ग है। स्वरूप में स्थिरता नहीं होती, यह चारित्र का दोष है; परंतु स्थिरता होनी चाहिये, उसके बिना केवलज्ञान और मुक्ति नहीं होती। अरे भाई! ऐसी प्रतीति कर तो सही! आत्मा का ज्ञान-श्रद्धान और रमणतारूपी एक पर्याय केवलज्ञान का कारण है।

अब कालद्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य घटाते हैं। जब एक परमाणु आकाश के एक

प्रदेश से दूसरे प्रदेश में मंदगति से गमन करता है, तो एक समय लगता है। उस समय में परमाणु निमित्त है और कालाणु उपादान कारण है। उससे वर्तमान समय की उत्पत्ति हुई यह उत्पाद हुआ, उसी समय पूर्व पर्याय का व्यय हुआ तथा वर्तमान और भूत समय के आधारभूत कालद्रव्य की ध्रुवता ज्यों की त्यों रही। इसप्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रुव धर्मों को धारण करनेवाला कालद्रव्य सिद्ध होता है। जहाँ कालद्रव्य की समय, घड़ी आदि पर्यायें होती हैं वहाँ कालद्रव्य होता ही है।

आत्मा को ज्ञान अपेक्षा से जानने पर नई पर्याय का उत्पाद, पुरानी पर्याय का व्यय और आत्मा ध्रुव ज्ञान में आता है। तथा पर्याय आत्मप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं और आत्मा भी पर्याय जितने क्षेत्र में रहता है। परंतु आत्मा में एक पर्याय का अंत और उसी समय दूसरी पर्याय का उत्पाद होता है। एक समय में अंत आवे और दूसरे समय में उत्पाद हो, ऐसा नहीं है। एक समय में दोनों होते हैं, उसी समय आत्मा भी ध्रुव रहता है।

एक समय हुआ—ऐसा कहने पर वर्तमान समय की उत्पत्ति, पूर्व समय का व्यय और दोनों की आधारभूत कालाणु की ध्रुवतावाला कालद्रव्य सिद्ध होता है। यदि काल त्रिकाली-द्रव्य नहीं माना जाए तो एक-एक समय हुआ... इत्यादि ज्ञान कैसे हो। क्योंकि कालसूचक त्रिकालीद्रव्य बिना कालसूचक समयरूपी पर्याय नहीं हो सकती है। इसलिये समय घड़ी आदि से त्रिकाली काल सिद्ध होता है। तथा अरूपी, संख्य कालाणु लोक में हैं, उनको नहीं मानने पर आत्मा के ज्ञान की महिमा नहीं आती है।

जिसप्रकार पाँच मन गुड़ का वजन करने के लिये कांटे पर पाँच मन के बाट रखने चाहिये, परंतु इसके बदले कोई मजदूर चार मन के बाट रखे तो वह मूर्ख कहा जाता है। उसे सही तोलना नहीं आता है। उसीप्रकार इस जगत में छह द्रव्य हैं तथा उन सभी द्रव्यों को जानने की सामर्थ्य आत्मा में है। फिर भी कोई छह के बदले पाँच प्रकार के द्रव्य कहे तो वह अपने ज्ञान में ज्ञेयों की माप करने में चतुर नहीं है, उसे केवली भगवान मूढ़ कहते हैं।

इसलिये जिसे मूढ़ता छोड़ना हो तो जगत में छह द्रव्य जैसे हैं, उन्हें वैसे ही जानना चाहिये। जो ऐसा ज्ञान करता है उसी का ज्ञान सम्यक् होता है और धर्म की प्राप्ति होती है।

सर्वप्रथम सर्वज्ञ भगवान द्वारा कथित आगम से सर्वज्ञ के स्वरूप का ज्ञान करना चाहिये। फिर परीक्षा द्वारा निर्णय करना चाहिये कि उन्हें पूर्ण ज्ञान था या नहीं। तथा उनकी

वाणी के अनुसार लिखे आगम की, आत्मा के आनंद की प्राप्ति में तत्पर वीतरागी गुरुओं की और उनके द्वारा कहे गये तत्त्वों की जानकारी करना चाहिये—इस पद्धति के बिना वस्तुतः तत्त्व समझ में नहीं आता है।

रत्नकरण्डश्रावकाचार में स्वामी समंतभद्र आचार्य कहते हैं :—

''जिसे सच्चे देव, गुरु और शास्त्र की खबर नहीं है, वे जीव मिथ्यादृष्टि हैं।''

सर्वज्ञ भगवान की वाणी के अनुसार लिखित आगम के अलावा अन्य कहीं भी जीव, पुद्गल आदि छह द्रव्यों की यथार्थ बात नहीं आती है। लोक में मात्र जीवद्रव्य और पुद्गलद्रव्य ही नहीं हैं, अपितु जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल छहों द्रव्य हैं। इनमें से कालद्रव्य की सिद्धि उत्पाद, व्यय और ध्रुव से करते हैं।

जब आत्मा अपने ज्ञानानंद स्वभाव का श्रद्धान-ज्ञान और लीनता करता है तो केवलज्ञान दशा प्राप्त होती है। केवलज्ञान दशा का उत्पाद, पूर्व ध्यानपर्याय का व्यय और दोनों के साथ ही आत्मा की ध्रुवता रहती है। इसप्रकार एक समय में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनों ही हैं। तथा एकसमय हुआ—ऐसा कहने पर वर्तमान समय का उत्पाद, पूर्व समय का व्यय और कालद्रव्य ध्रुव (नित्य) रहता है।—इसप्रकार कालद्रव्य की सिद्धि होती है।

श्वेतांबर शास्त्रों में पाँच द्रव्यों की ही सिद्धि है, कालद्रव्य का कहीं भी कथन नहीं है; अतः उनका आगम यथार्थ वस्तु व्यवस्था बतानेवाला नहीं है। जाति अपेक्षा छह द्रव्यों में से एकद्रव्य भी कम जाने तो ज्ञान के स्वभाव का पूर्ण विकास सिद्ध नहीं होता है। ज्ञान के पूर्ण विकास के अभाव में सर्वज्ञता सिद्ध नहीं होती और सर्वज्ञता के अभाव में उनका आगम भी सही सिद्ध नहीं होता है।

प्रश्न :- अलोकाकाश में कालाणु नहीं हैं तो वहाँ परिणमन कैसे होता है? वहाँ भी कालाणु का निमित्त होना चाहिये? प्रत्येक द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यस्वरूप होता है। आकाश में भी उत्पाद-व्ययरूप परिणमन होता है और परिणमन में कालाणु निमित्त हैं, यह भी निश्चित है। परंतु अलोकाकाश में कालाणु के निमित्त बिना परिणमन कैसे होता है?

उत्तर :- जिसप्रकार कुम्हार का अखंड चाक अपने एक भाग में डंडे का निमित्त पाकर परिणमन करता है; उसीप्रकार अखंड आकाश के एक भाग (लोकाकाश) में कालाणुओं के निमित्त से संपूर्ण (लोकाकाश) आकाश में परिणमन होता है।

ऊपर जो काला-नीला दिखाई देता है, वह आकाश नहीं है, पुद्गल की पर्याय है। आकाश तो अरूपी है, उसका नीला-काला रंग होता ही नहीं हैं। सभी द्रव्यों को अवगाह (स्थान) देनेवाला आकाशद्रव्य अखंड है और लोकाकाश में स्थित कालाणु समस्त आकाश के परिणमन में निमित्त होते हैं।

किसी स्थान विशेष पर पीछी रगड़ें तो उसका वेदन पूरे आत्मा को होता है। अमुक प्रदेश में स्पर्शनेन्द्रिय से अमुक विषय का सेवन करते हुये सारे शरीर में सुख का वेदन होता है। उसीप्रकार लोक में स्थित कालाणुओं को धारण करनेवाला एकदेश आकाश है; उससे ही सारे आकाश में परिणमन होता है अर्थात् लोक में स्थित कालाणु के निमित्त से लोकाकाश और अलोकाकाश दोनों में ही परिणमन होता है। [क्रमशः]

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न- व्यवहार का अति निषेध करना उचित नहीं है-ऐसा पंच संग्रह में कहा है, उसका क्या आशय है।

उत्तर- भगवान का दर्शन, पूजन, भक्ति, शास्त्रश्रवण, स्वाध्याय आदि व्यवहार होता है, उस व्यवहार का परिणाम आता है; उसका निषेध करने यदि जायेगा तब तो जिनदर्शन, श्रवणादि कुछ रहेगा ही नहीं। पर्याय में पंचमहाव्रतादि के परिणाम का व्यवहार होता है अथवा नवदेव के दर्शन, भक्ति आदि का व्यवहार होता है, उसको माने ही नहीं तो वह मिथ्यादृष्टि है और उस व्यवहार से धर्म होता है ऐसा माने तो भी मिथ्यादृष्टि है। पर्याय है

और उस पर्याय में अनेक प्रकार के शुभराग का व्यवहार है उसको माने ही नहीं तो मिथ्यादृष्टि है। तीर्थंकर भगवान के कल्याणकों में इंद्रादि देव करोड़ों देवों की सेना सहित दर्शन-पूजन आदि के लिये आते हैं। भले ही वह व्यवहार है तो हेय, किंतु वह भाव आता अवश्य है, आये बिना रहता नहीं। वह व्यवहार जाननेयोग्य है, उसे यथावत् न जाने तो मिथ्यादृष्टि है। एक ओर तो कहते हैं निर्मल क्षायिक पर्याय का भी लक्ष्य करे तो राग होता है, अतः उस निर्मल पर्याय को भी परद्रव्य कहकर हेय कहा और दूसरी ओर शुभराग का व्यवहार आता है, होता है, उसको जाने ही नहीं—माने ही नहीं, तो वह मिथ्यादृष्टि है। देव-शास्त्र-गुरु जो व्यवहार के विषय हैं उन्हें जानना तो चाहिये। भले ही वे आश्रय करनेयोग्य नहीं हैं, किंतु जाननेयोग्य तो अवश्य हैं। व्यवहार है—ऐसा न माने तो मिथ्यादृष्टि है। जैनधर्म अनेकांत है, वह बराबर समझना है, वह न समझे तो एकांत हो जायेगा।

प्रश्न- आत्मद्रव्य की महिमा विशेष है या द्रव्य को लक्ष्य में लेनेवाली पर्याय की ?

उत्तर- आत्मद्रव्य की महिमा विशेष है। पर्याय द्रव्य का लक्ष्य करे तब मोक्षमार्ग का प्रारंभ होता है, इसी अपेक्षा से पर्याय की महिमा कही जाती है। किंतु पर्याय तो एकसमय की है, जबकि द्रव्य पर्याय से अनंत-अनंत गुणी सामर्थ्यवाला है—त्रिकाल महाप्रभु है, इसलिये द्रव्य की महिमा ही विशेष है।

प्रश्न- एक वस्तु दूसरी वस्तु की नहीं, अतः उसका उसके साथ कोई संबंध नहीं, फिर शास्त्र में निमित्त-नैमित्तिक संबंध का कथन क्यों ?

उत्तर- यह तो नैमित्तिकभाव अपने से परिणमता है, उससमय निमित्त कौन था उसका ज्ञान कराने को कथन शास्त्र में आता है। निमित्त-निमित्त में और नैमित्तिक-नैमित्तिक में परिणमन करता है; एक वस्तु दूसरी वस्तु में कुछ नहीं करती, दोनों वस्तुयें भिन्न ही हैं। एक वस्तु दूसरी वस्तु का करे भी कैसे ?

प्रश्न- भावलिंगी मुनि का लक्षण क्या है ?

उत्तर- अंतर्मुहूर्त में छठे-सातवें गुणस्थान में आता-जाता रहे वही लक्षण भावलिंगी मुनि का है। छठे गुणस्थान में भी अंदर शुद्धपरिणति रहती है, वही भावलिंगीपना है। मुनिदशा

में तो आनंद का प्रचुर स्वसंवेदन होता है। चतुर्थ-पंचम गुणस्थान में भी आनंद का वेदन होता है, किंतु अल्प होता है जबकि भावलिंगी मुनि के प्रचुर होता है।

प्रश्न- भावलिंगी मुनि को छठे गुणस्थान में शुभभाव आता है। क्या वह भी मोक्षमार्ग है ? क्या उसे वह श्रेयस्कर-सुखकर लगता है ? यदि नहीं तो क्यों ?

उत्तर- भावलिंगी मुनि को छठे गुणस्थान में महाव्रतादि का शुभराग आता है—वह प्रमाद है, शास्त्र में उसे जगपंथ कहा है; वह मोक्षपंथ-मोक्षमार्ग नहीं है। स्वरूप में ठहर जाना ही मुनिदशा है, उसमें से निकलकर शुभराग में आना मुनि को सुहाता नहीं है। जिसप्रकार चक्रवर्ती को अपने सुखदायी महल में से बाहर आना रुचता नहीं है; उसीप्रकार चैतन्यमहल में जो विश्रांति से बैठा है, उसे वहाँ से बाहर निकलना पसंद नहीं आता। अशुभराग तो पापरूप जहर है ही, परंतु शुभराग भी दु:खरूप बंधन है।

आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानानंद की मूर्ति है, जिसे ऐसे निजस्वरूप की पहिचान हुई है उसे फिर स्वरूप से बाहर निकलने की इच्छा नहीं होती। जिसके ९६ हजार रानियाँ, ९६ करोड़ ग्राम और १६ हजार सेवा करनेवाले हों, ऐसे बाह्य वैभव में रहनेवाला चक्रवर्ती उस वैभव को मल के समान क्षणमात्र में त्यागकर आनंद का उग्र स्वाद लेने के लिये वन में चला जाता है। इस अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र-प्रचुर स्वाद लेनेवाले को शुभरागरूपी आकुलता में आना कठिन लगता है—भारस्वरूप लगता है, बाहर आना रुचता नहीं। शास्त्र-रचना अथवा उपदेश देने का विकल्प आता तो है, परंतु रंचमात्र भी उसे श्रेयस्कर नहीं मानता—हेय ही मानता है।

प्रश्न- पर से अपना कार्य नहीं होता,-ऐसा निर्णय करने से क्या लाभ ?

उत्तर- पर से अपना कार्य होता ही नहीं, ऐसा निर्णय करते ही परालंबी श्रद्धा तो छूट ही जाती है, इतना तो लाभ है ही; तत्पश्चात् स्व-तरफ बढ़ना रह जाता है, तथा स्व के आश्रय का पुरुषार्थ करते ही सम्यग्दर्शन हो जाता है।

प्रश्न- सभी शास्त्रों का सार स्वसन्मुख होना ही कहा है, तो सभी को पढ़ने की क्या आवश्यकता ? हमें तो स्वसन्मुख होने का ही प्रयत्न करना चाहिये।

उत्तर- स्वसन्मुख होने का ही प्रयत्न करना है, परंतु जब तक स्वसन्मुख न हो पाता हो और

अनेक प्रकार से अटक जाने की शल्य पड़ी हो तब तक शास्त्र-वांचन का विकल्प आता है, आये बिना रहता नहीं; तथा शास्त्र भी स्वसन्मुख होने के लिये ही कहते हैं।

प्रश्न- धर्म का प्रारंभ किसके आश्रय से होता है ?

उत्तर- एक स्वद्रव्य का आश्रय करने से ही धर्म का प्रारंभ होता है, इसके विपरीत लाख परद्रव्य का आश्रय करे तथापि धर्म का प्रारंभ हो सकता नहीं। पर्याय द्रव्य की तरफ ढले, द्रव्य का आश्रय ले, इसी प्रयोजन से समस्त वांचन, विचार, मनन, श्रवण करना चाहिये, क्योंकि मूल अभिप्राय तो द्रव्य का आश्रय लेना ही है।

प्रश्न- पंचास्तिकाय को अर्थी होकर सुने-इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर- अर्थी होकर अर्थात् सेवक होकर, दास होकर सुनना। जैसे किसी बड़े आदमी के पास याचक होकर मांगा जाता है; उसीप्रकार गुरु के पास पात्र शिष्य याचक होकर सुनता है। 'मैं भी कुछ जानता हूँ'—इसप्रकार अभिमानपूर्वक नहीं सुनता, किंतु गरजमंद होकर अपना हित करने के लिये सुनता है। अपने ज्ञान में पंचास्तिकाय को जानता है—निर्णय करता है।

प्रश्न- द्रव्य और पर्याय में से बल किसका अधिक है ?

उत्तर- द्रव्य का बल अधिक है। पर्याय तो एकसमय जितनी ही है और द्रव्य तो त्रिकाली सामर्थ्य का पिंड है।

प्रश्न- मोक्ष का कारण परमपारिणामिक भाव है या क्षायिकभाव ?

उत्तर- वास्तव में तो परमपारिणामिक भाव ही मोक्ष का कारण है, किंतु पर्याय से कथन करना हो तो क्षायिक, उपशम, क्षयोपशम को भी मोक्ष का कारण कहा जाता है।

प्रश्न- शुभभाव को हेय मानते हुए बीच में अशुभभाव आ जाय तो ?

उत्तर- अशुभभाव तो सम्यक्त्वी को भी आता है, आर्त-रौद्र ध्यान भी होता है। शुभ को हेय मानते हुए श्रद्धा का बल कहाँ है-यह बात देखने की है।

प्रश्न- आत्मा का स्वरूप ज्ञान में आने पर भी वीर्य बाह्य में क्यों अटक जाता है ?

उत्तर- जैसा विश्वास आना चाहिये वैसा आता नहीं है, इसलिये अटक जाता है। जानपना तो ग्यारह अंग का भी हो जाये, परंतु यथोचित भरोसा नहीं आता। भरोसे से भगवान हो जाये, परंतु वह नहीं आता, इसलिये भटकता है।

प्रश्न– इसमें रुचि की कमी है या भावभासन में भूल है ?

उत्तर– मूल में तो रुचि की ही कमी है।

प्रश्न– अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को प्रथम जानने के लिये कहा है न ?

उत्तर– उन अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय का लक्ष्य छोड़कर स्वयं को पहचाने तो भेदज्ञान हो और तभी उन अरहंत को निमित्त कहा जाये।

प्रश्न– पर की पर्याय को नहीं करता यह तो ठीक, तो क्या अपनी पर्याय को भी नहीं करता ?

उत्तर– अपनी पर्याय भी स्वकाल में होती ही है और होगी ही, फिर उसका करना क्या ? वास्तव में तो यह ज्ञाता-दृष्टा ही है। प्रयत्नपूर्वक मोक्ष को करो—ऐसा कथन आता है, कमर कसकर मोह को जीतो—ऐसा भाषा में आता है; परंतु वास्तव में तो इसकी दृष्टि में द्रव्य ही आया है अर्थात् यह ज्ञाता-दृष्टा ही है। ज्ञाता-दृष्टा में अनंत पुरुषार्थ है।

प्रश्न– न्याय और तर्क से तो यह बात जमती है, किंतु अंदर में जाने का साहस क्यों नहीं हो पाता ?

उत्तर– अंदर में पहुँचने का जितना पुरुषार्थ होना चाहिये उतना नहीं बन पाता, इसलिये बाहर भटकता रहता है। अंदर जाने की रुचि नहीं इसलिये उपयोग अंदर जाता नहीं।

पंडित कैलाशचंदजी एवं पंडित नरेंद्रकुमारजी भिसीकर की कक्षाओं का विशेष आयोजन

जयपुर (राज०)—श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के वार्षिक विशेष कार्यक्रम के अंतर्गत दिनांक ७-३-८० से सिद्धांताचार्य पंडित कैलाशचंद्रजी शास्त्री, वाराणसी सिद्धांतग्रंथों की कक्षाऐं लेंगे।

इसके पूर्व दिनांक ४-३-८० से १५ दिन तक न्यायशास्त्र के विशिष्ट विद्वान पंडित नरेन्द्रकुमारजी भिसीकर, सोलापुर न्यायशास्त्र की कक्षाऐं लेंगे।

डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल तो यहाँ हैं ही। इसी अवसर पर धर्म लाभार्थ पंडित नेमीचंदजी पाटनी, कन्नड़ पधार रहे हैं। ब्रह्मचारी यशपालजी एम०ए० तथा अन्य तीन बहिनें भी धर्मलाभ के लिये यहाँ पहले से ही हैं। **— प्राचार्य**

समाचार दर्शन

पूज्य कानजीस्वामी का विहार कार्यक्रम

सोनगढ़ :- पूज्य स्वामीजी का बड़ौदा एवं अहमदाबाद का कार्यक्रम सानंद संपन्न हो गया है। अब स्वामीजी का आगे का कार्यक्रम निम्नानुसार रहेगा:—

बढ़वाण- ६ से ९ मार्च, जोरावरनगर - १० व ११ मार्च, सुरेन्द्रनगर - १२ से १५ मार्च, लींबड़ी - १६ से १८ मार्च, राणपुर - १९ व २० मार्च, गढ़डा - २१ व २२ मार्च, सोनगढ़ -२३ मार्च से १ अप्रेल, मलाड़ (बम्बई) - २ अप्रेल से १६ अप्रेल, मद्रास - १७ अप्रेल से २२ अप्रेल, बंगलौर - २३ अप्रेल से २८ अप्रेल, हैदराबाद - २९ अप्रेल से २ मई, बम्बई - ३ मई, राजकोट - ४ मई से १८ मई, सोनगढ़ - १९ मई।

१६ अप्रेल, १९८० को मलाड़ (बम्बई) में पूज्य स्वामीजी का ९१वाँ जन्म-जयंती महोत्सव विशाल समारोह के साथ संपन्न होगा।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-समारोह सानंद संपन्न

बड़ौदा (गुजरात) :- गुजरात की प्रमुख औद्योगिक नगरी बड़ौदा में श्री आदिनाथ दिगंबर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव २३ फरवरी से २८ फरवरी, १९८० तक पूज्य श्री कानजीस्वामी की छत्रछाया में अभूतपूर्व उत्साह के साथ संपन्न हुआ। विदित हो कि गत १५ माह पूर्व पूज्य स्वामीजी की छत्रछाया में ही यहाँ जिनमंदिर एवं स्वाध्याय भवन का शिलान्यास हुआ था। एक वर्ष की अल्पावधि में ही जिनमंदिर का निर्माण हुआ, जिसकी प्रतिष्ठा हेतु उक्त आयोजन किया गया।

पूज्य गुरुदेवश्री १८ फरवरी, १९८० को प्रातः बड़ौदा पधार गये थे। उनका भव्य स्वागत किया गया तथा कार्यक्रमस्थल तक विशाल जुलूस में लाया गया। स्वागताध्यक्ष श्री जसवंतलाल शाह, भूतपूर्व उद्योगमंत्री, गुजरात तथा जिलाधीश महोदय एवं नगरपालिकाध्यक्ष ने पूज्य स्वामीजी का हार्दिक स्वागत करते हुए उनके आगमन पर प्रसन्नता व्यक्त की।

१८ फरवरी से प्रतिदिन प्रातः ८ से ९ एवं दोपहर २.३० से ३.३० तक पूज्य स्वामीजी के आध्यात्मिक प्रवचन तथा सायंकाल ७ से ७.४५ तक तत्त्वचर्चा होती थी। जिनका लाभ लेने के लिये बाहर से आये हजारों साधर्मी भाईयों के अतिरिक्त स्थानीय जैन एवं जैनेतर जनता भी उपस्थित होती थी। तत्त्वचर्चा का संचालन विद्वद्वर्य पंडित बाबूभाई मेहता, फतेपुर करते थे।

तत्त्वचर्चा के अतिरिक्त प्रतिष्ठा-महोत्सव की भी सारी तैयारी बाबूभाईजी के मार्गदर्शन में ही हुई। वे यहाँ एक माह पूर्व ही आ गये थे। इसके अतिरिक्त सभी कार्यक्रमों एवं बोलियों का संचालन भी बाबूभाई ही करते थे।

प्रतिष्ठाचार्य पंडित धन्नालालजी ग्वालियर के मार्गदर्शन में प्रतिष्ठा संबंधी सारी गतिविधियाँ संचालित की गयीं। सहायक प्रतिष्ठाचार्य ब्रह्मचारी पंडित अभिनंदनकुमारजी, ब्रह्मचारी पंडित जतीशचंदजी शास्त्री एवं पंडित मुन्नालालजी ललितपुरवाले थे। समय-समय पर आयोजित आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा के आकर्षण से युक्त इंद्रसभा एवं राज्यसभा के संचालन में सहायक प्रतिष्ठाचार्य ब्रह्मचारी पंडित जतीशचंदजी शास्त्री एवं प्रतिष्ठा संबंधी समस्त व्यवस्था में ब्रह्मचारी श्रीचंदजी का योगदान अविस्मरणीय रहा।

प्रतिष्ठा-महोत्सव में ब्रह्मचारी केशवरावजी, ब्रह्मचारी लाभानंदजी आदि अनेक त्यागीगण एवं पंडित खीमचंदभाई सोनगढ़, पंडित लालचंदभाई मोदी राजकोट, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर, पंडित रतनचंदजी भारिल्ल जयपुर, पंडित शशिभाई भावनगर, पंडित हीराभाई सोनगढ़, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित देवीलालजी उदयपुर आदि विद्वान तथा सेठ पन्नालालजी गंगवाल कलकत्ता, सेठ रतनलालजी गंगवाल कलकत्ता, सेठ शांतिभाई जबेरी बम्बई, सेठ कांतिभाई मोटाणी बम्बई, सेठ सुकुमारचंदजी मेरठ, सेठ भभूतमलजी भंडारी बैंगलोर, सेठ मीठाभाई बम्बई आदि महानुभाव भी पूज्य स्वामीजी की अमृतवाणी का लाभ लेने पधारे थे।

रात्रि को तत्त्वचर्चा के पश्चात् डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के पंचकल्याणकों के स्वरूप एवं महत्त्व पर एवं मोक्षमार्गप्रकाशक के सम्यक्त्व-सम्मुख मिथ्यादृष्टि प्रकरण पर तथा समयसार के १०वें कलश एवं १०वीं गाथा पर गंभीर प्रवचन हुए।

प्रतिष्ठा-महोत्सव के पूर्व तीनों समय पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा एवं पंडित अभयकुमारजी जयपुर द्वारा छहढाला एवं मोक्षमार्गप्रकाशक की कक्षायें भी चलती थीं। पंडित देवीलालजी उदयपुर का भी प्रवचन हुआ।

प्रतिष्ठा-महोत्सव का लाभ लेने हेतु देश के कोने-कोने से लगभग १३ हजार साधर्मी भाई-बहन पधारे थे। २० तारीख से ही पूज्य स्वामीजी का प्रातःकालीन प्रवचन हिंदी में होने लगा था।

केवलज्ञान कल्याणक के दिन ज्ञानप्रचार की दृष्टि से सेठ शांतिभाई जवेरी एवं सेठ कांतिभाई मोटाणी की ओर से साहित्य खरीदने हेतु ५० प्रतिशत की कमी की घोषणा की गयी। १५ हजार रुपयों का हिन्दी व गुजराती साहित्य विक्रय हुआ। आत्मधर्म के २४ स्थाई एवं अनेक वार्षिक ग्राहक बने। इस अवसर पर लगभग साढ़े आठ लाख की आय हुई और व्यय भी लगभग इतना ही हुआ।

श्री कुंदकुंद कहान दि० जैन भजन मंडली घाटकोपर, बम्बई द्वारा प्रस्तुत जिनेन्द्रभक्ति एवं वैराग्यप्रेरक संवाद भी जनसमुदाय के मन को सहज मोह लेते थे।

इस अवसर पर अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की अशोकनगर एवं खनियाधाना शाखा तथा जैन वीर दल, गुना ने जुलूस, भोजनालय, सुरक्षा आदि व्यवस्थाओं में सराहनीय सहयोग दिया तथा उनके द्वारा आकर्षक झांकियाँ भी प्रस्तुत की गयीं।

उक्त शाखाओं की सेवा से प्रभावित होकर उनको श्री दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल, बड़ौदा की ओर से पूज्य स्वामीजी के कर-कमलों द्वारा पुरस्कृत किया गया।

२६ फरवरी को दोपहर में श्री दि० जैन महासमिति की गुजरात शाखा का अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता दि० जैन महासमिति के महामंत्री सेठ सुकुमारचंदजी मेरठ ने की।

२६ फरवरी की रात्रि में सेठ भभूतमलजी भंडारी बंगलौर की अध्यक्षता में युवा सम्मेलन का आयोजन किया गया; जिसमें अ०भा० जैन युवा फैडरेशन की बड़ौदा शाखा गठित की गयी।

समस्त आयोजन में गुजरात राज्य के भूतपूर्व उद्योग मंत्री श्री जसवंतलाल शाह का विशेष सहयोग रहा। बड़ौदा के सभी मुमुक्षु भाईयों ने अत्यंत उत्साहपूर्वक सभी कार्यक्रमों में भाग लेते हुए व्यवस्था में सक्रिय सहयोग दिया।

बाहर से पधारे सभी महानुभावों के लिये आवास एवं भोजन की नि:शुल्क व्यवस्था की गई थी।

— चन्दूलाल पोपटलाल कोटड़िया

जिनमंदिर शिलान्यास समारोह संपन्न

अहमदाबाद :- दिनांक २-३-८० को स्थानीय नवरंगपुरा में जिनशासन प्रभावक पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के सदोपदेश से प्रभावित होकर हजारों भाई-बहिनों की उपस्थिति में श्री महावीरस्वामी दिगंबर जिनबिम्ब एवं श्री कुंदकुंद कहान दि० जैन स्वाध्याय

भवन का शिलान्यास समारोह सानंद संपन्न हुआ। शिलान्यास सेठ पन्नालालजी गंगवाल द्वारा किया गया।

पूज्य गुरुदेवश्री बड़ौदा पंचकल्याणक के पश्चात् २९ फरवरी को यहाँ पधारे। ५ मार्च तक पूज्य गुरुदेवश्री की अमृतवाणी का तत्त्वपिपासु जनसमुदाय ने रसास्वादन किया। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर सुरेन्द्रनगर निवासी श्री मनसुखलाल की २९ वर्षीय सुपुत्री कु० प्रमिला जैन, बी.ए. ने पूज्य स्वामीजी के समक्ष ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ली। साथ ही अन्य चार दम्पतियों ने भी ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा धारण की।

डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के भी चार प्रवचन मोक्षमार्गप्रकाशक एवं क्रमबद्धपर्याय पर हुए। पंडित लालचंदभाई मोदी के भी अत्यंत प्रभावक प्रवचन हुए। जिनसे महती धर्मप्रभावना हुई।

शिलान्यास की खुशी में सेठ श्री पन्नालालजी गंगवाल की ओर से उपस्थित समाज को दो सौ क्रमबद्धपर्याय की पुस्तकें पूज्य गुरुदेवश्री के कर-कमलों द्वारा भेंट की गयीं।

सभी कार्यक्रमों में समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। मंदिर के निर्माण कार्य हेतु लगभग ३,६०,००० रुपये की राशि प्राप्त हुई। मंदिर का निर्माण कार्य पंडित बाबूभाई मेहता के मार्गदर्शन में संपन्न होगा। **— अभय जैन**

पंडित ज्ञानचंदजी द्वारा धर्मप्रभावना

दिनांक ५-२-८० से १२-२-८० तक पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावाले इंदौर, उज्जैन, बड़नगर तथा लुहारदा पधारे। सभीस्थानों पर तीनों समय समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक तथा रत्नकरण्डश्रावकाचार पर आपके आध्यात्मिक प्रवचन हुए, जिससे समाज में महती धर्म प्रभावना हुई। इस अवसर पर कुंदकुंद कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट एवं कुंदकुंद कहान सर्वोदय ट्रस्ट को ५९५४३) रुपये की राशि प्राप्त हुई। **— माणिकलाल आर० गाँधी**

चौदहवाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर वाशीम (महाराष्ट्र) में

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित शिविर-शृंखला में चौदहवाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का आयोजन दिनांक १७ मई से ५ जून १९८० तक महाराष्ट्र प्रांत के वाशीम (जिला आकोला) में होना निश्चित हुआ है।

इस शिविर में पाठशालाओं में पढ़नेवाले अध्यापकों के लिये प्रशिक्षण कक्षाओं के

साथ-साथ सामान्य लोगों के लिये शिक्षण कक्षाओं और श्रीमान् पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, पंडित नेमीचंदजी पाटनी आदि विद्वानों के प्रवचनों का भी आयोजन रहेगा।

विधान सभाओं के मध्यावधि चुनावों अथवा परीक्षाओं आदि अन्य कारणों से शिविर की तिथियों में परिवर्तन करना पड़ा तो उसकी सूचना तथा विस्तृत जानकारी अगले अंक में ही जावेगी। **— मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४**

वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की निरीक्षण रिपोर्ट

भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति के निरीक्षक पंडित श्री रमेशचंदजी ने दिनांक १८-१-८० से ७-२-८० तक उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान में चल रहीं लगभग २५ पाठशालाओं का निरीक्षण किया, जिनके नाम इसप्रकार हैं:—

जखौरा, लागोंन, ललितपुर (तीन पाठशालाएँ—क्षेत्रपालजी, स्टेशन रोड चैत्यालय, नया मंदिर), गंजवासौदा, शमशाबाद, भोपाल (दो पाठशालाएँ-चौक, मंगलवारा), इंदौर (आठ पाठशालाएँ-छावनी, नवलखा, राजमुहल्ला, मल्हारगंज, शक्कर बाजार, कृष्णपुरा, मारवाड़ी मंदिर, तुकोगंज), उज्जैन, रतलाम, जावरा, दाहोद (गुजरात), कुशलगढ़, कलिंजरा, बड़ौदिया, बागीदौरा और नौगाँवाँ।

लागोंन, ललितपुर, भोपाल (चौक) तथा इंदौर (राजमुहल्ला)—इन पाठशालाओं को देखकर निरीक्षक महोदय ने हार्दिक संतोष व्यक्त किया है। शेष पाठशालाएँ भी सामान्यत: ठीक चलती पाई गईं। **— मंत्री, भा० वी०वि० पाठशाला समिति**

कलकत्ता—यहाँ प्रथमबार बण्डेल के प्रांगण में विराट पंचकल्याणक महोत्सव का झंडारोहण का कार्य सेठ श्री रतनलालजी गंगवाल द्वारा १५ फरवरी को किया गया।

— श्रवणकुमार जैन

आरोंन (म०प्र०)—दिनांक ५-२-८० से १८-२-८० तक स्थानीय युवा फैडरेशन की शाखा के तत्त्वावधान में ब्रह्मचारी संतोषभाई सोनगढ़ के प्रवचन आयोजित किये गये। आपके प्रवचनों से युवा पीढ़ी विशेष प्रभावित हुई तथा समाज में अच्छी धर्म प्रभावना हुई। श्री कुंदकुंद वीतराग-विज्ञान पाठशाला के विशेष योग्यता प्राप्त छात्रों को पुरस्कार भी वितरित किये गये। **—विजय कौछल**

आवश्यकता है—एक ऐसे विद्वान की जो पाठशाला एवं हायर सेकेण्ड्री स्कूल में बच्चों को धर्म पढ़ा सके। वेतन लगभग ५००) रुपये मासिक।

— दि० जैन मुमुक्षु मंडल, जैनमंदिर मार्ग, बल्जी राठौर की गली, अलवर (राज०)

'क्रमबद्धपर्याय' पर महत्त्वपूर्ण अभिमत

सिद्धांताचार्य, पंडित कैलाशचंद्रजी वाराणसी (उ०प्र०)

क्रमबद्धपर्याय भी अब जानकर जैनों से अज्ञात नहीं है। आज से लगभग दो दशक पूर्व हमने इस पर 'संदेश' में बहुत लिखा था और जैनगजट में उसके संपादक पंडित अजितकुमारजी शास्त्री ने इसका विरोध किया था। खानियांचर्चा में यह विषय चर्चित हुआ था। इसको माने बिना सर्वज्ञता बनती नहीं और सर्वज्ञ को माने बिना जैनधर्म की स्थिति नहीं है। जो इसका विरोध करते हैं, वे जैनधर्म के मूल पर कुठाराघात करते हैं।

जब केवलज्ञान सब द्रव्यों की सब पर्यायों को जानता है अर्थात् भूत और वर्तमान पर्याय की तरह भावी पर्यायों को जानता है—ऐसी कोई पर्याय नहीं है जो उसका विषय न हो—तो ही सर्वज्ञता बनती है। किस द्रव्य की कौन पर्याय किस काल में होगी यह सर्वज्ञ जानते हैं। इस तरह जब प्रत्येक पर्याय का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उसे ज्ञात है, तब पर्यायों का क्रम तो सुनिश्चित होना ही चाहिये।

आचार्य कुंदकुंद ने प्रवचनसार के प्रथम अधिकार में इसे सुस्पष्ट किया है। हाँ, क्रमबद्ध शब्द का प्रयोग नहीं किया। आचार्य अमृतचंद्र ने समयसार के सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार के प्रारंभ में क्रमनियमित या क्रमनियत पद का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ 'क्रमबद्ध' ही होता है।

जिसे आगम में अकालमरण कहा है वह भी अक्रमनियत नहीं है। किस जीव ने कितनी आयु का बंध किया है और वह आयु पूरी करके मरेगा या अकाल में ही अर्थात् आयु का समय पूरा होने से पूर्व ही उदीरणा प्रत्यय के द्वारा मरेगा यह भी सर्वज्ञ से अज्ञात नहीं है। अकाल का आशय है, जितनी आयु बाँधी उसे पूर्ण न भोगकर मरण। श्रुतज्ञान में वह अकालमरण कहा जाता है, किंतु सर्वज्ञ के ज्ञान में वह भी प्रतिभासित है।

इस पुस्तक में विद्वान लेखक ने इस पर विचार किया है और प्रश्नोत्तर द्वारा अच्छा प्रभाव डाला है। छपाई, कागज, गेट-अप सभी सुंदर और आकर्षक हैं।

— जैन संदेश (साप्ताहिक), मथुरा, २१ फरवरी १९८० से साभार

वयोवृद्ध विद्वान पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री, कटनी

क्रमबद्धपर्याय का कथन आचार्य अमृतचंद्र की आत्मख्याति टीका (समयसार) में आया है। उन्होंने 'क्रमनियमित' शब्द का प्रयोग किया है। दोनों शब्द का अर्थ समान ही है। जो क्रमनियमित हो वह क्रमबद्ध है, और जो क्रमबद्ध हो वह क्रमनियमित है। अर्थभेद नहीं है। बल्कि क्रमबद्ध में पर्याय के क्रम की ही सूचना है और क्रमनियमित में वह पर्याय केवल क्रमबद्ध ही नहीं, किंतु जिन-जिन कारणों के संदर्भ में वह पर्याय है, वे सब कारण तथा उनका यथासमय संयोग भी नियमित है, यह स्पष्ट होता हैं। इसका विरोध आचार्य अमृतचंद्र का ही विरोध है।

डॉ० भारिल्ल कलम के धनी हैं, अत: उनके द्वारा लिखी गई उक्त पुस्तक यथार्थ तत्त्व के निरूपण करने में सफल है, यह कहा जा सकता है।

क्रमबद्धपर्याय के संबंध में अनेक विद्वान विवाद करते हैं, वे इसे स्वीकार नहीं करते। यह सब विरोध केवल इस आधार पर है कि डॉ० भारिल्ल सोनगढ़ पक्ष के हैं और सोनगढ़ पक्ष की ओर उक्त विद्वानों की वक्र दृष्टि है, अन्यथा वे भी विरोध न करते।

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें: —

(१) आत्मधर्म का वार्षिक चंदा अब ९) रुपया हो गया है। कृपया मनिआर्डर भेजते समय ध्यान रखें।

(२) जिन बंधुओं ने गत वर्ष सोनगढ़ में आगामी वर्ष के लिए चंदा जमा कराया था, उन्हें जुलाई माह से आत्मधर्म भेजा जाएगा।

(३) सभी ग्राहकों को चंदे की अवधि समाप्त होने के एक माह पूर्व हमारे कार्यालय से मनिआर्डर फार्म भेजे जाते हैं। कृपया मनिआर्डर फार्म प्राप्त होते ही उसे तुरंत भरकर भेज दें ताकि आत्मधर्म नियमित प्राप्त हो सकें। चंदा प्राप्त न होने की दशा में उसके अगले माह से आत्मधर्म भेज पाना संभव नहीं होगा।

आत्मार्थी छात्रों को अपूर्व अवसर

आत्मार्थी छात्र डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के सान्निध्य में रहकर चारों अनुयोगों के माध्यम से जैनधर्म का सैद्धांतिक अध्ययन कर सकें तथा साथ ही संस्कृत, न्याय, व्याकरण आदि विषयों का आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर सकें—इस उद्देश्य से फलस्वरूप श्री टोडरमल स्मारक भवन में २४ जुलाई, १९७७ से टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय चल रहा है। अभी इसमें ३२ आत्मार्थी छात्र अध्ययन कर रहे हैं।

इस वर्ष सिर्फ बारह छात्रों को नवीन प्रवेश देना है।

उक्त छात्रों को राजस्थान विश्वविद्यालय की जैनदर्शन-शास्त्री एवं जैनदर्शन-आचार्य परीक्षाऐं दिलाई जाती हैं, जो क्रमशः बी०ए० और एम०ए० के बराबर सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हैं।

शास्त्री का कोर्स ३ वर्ष का है। उसके बाद २ वर्ष का कोर्स आचार्य परीक्षा का है। शास्त्री परीक्षा में प्रवेश के लिए एक वर्ष का उपाध्याय कोर्स करना होगा जो कि हायर सेकेण्ड्री के समक्ष है।

उपाध्याय परीक्षा में प्रवेश हेतु, किसी भी वैकल्पिक विषय से हाईस्कूल अथवा हायर सेकेण्ड्री [कक्षा दसवीं या ग्यारहवीं] की बोर्ड परीक्षा में कम से कम ५० प्रतिशत अंकों से उत्तीर्ण होना आवश्यक है। आवेदन करते समय वैकल्पिक विषयों सहित अपनी शैक्षणिक योग्यता अवश्य लिखें एवं संबंधित अंकसूची भी भेजें।

उक्त परीक्षाओं के अतिरिक्त वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड, जयपुर द्वारा संचालित सभी परीक्षाओं में तथा शास्त्री कक्षा के छात्रों को बंगीय संस्कृत शिक्षा परिषद द्वारा संचालित न्यायप्रथमा, न्यायमध्यमा और न्यायतीर्थ परीक्षाऐं भी दिलाई जाती हैं।

छात्रों में आध्यात्मिक रुचि उत्पन्न करने हेतु वर्ष में एक या दो बार पूज्य स्वामीजी के सान्निध्य के लाभ हेतु सोनगढ़ ले जाया जाता है।

स्मारक भवन में ही निरंतर आध्यात्मिक वातावरण प्रदान करने हेतु आदरणीय विद्वद्वर्य पंडित लालचंदभाई मोदी बम्बई, पंडित खीमचंदभाई सोनगढ़, सिद्धांताचार्य पंडित फूलचंदजी वाराणसी, पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, पंडित नेमीचंदजी पाटनी आगरा, पंडित नरेन्द्रकुमारजी भिसीकर सोलापुर आदि का सान्निध्य प्राप्त होता है। डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल एवं पंडित रतनचंदजी भारिल्ल तो यहाँ हैं हीं।

इसप्रकार पूरा-पूरा आध्यात्मिक वातावरण रहता है।

आवास एवं भोजन की सुविधा निःशुल्क रहती है।

आगामी सत्र जुलाई १९८० से प्रारंभ होगा। प्रवेशार्थी शीघ्र ही प्रार्थना पत्र प्रेषित करें। यदि उन्हें प्रवेश योग्य समझा गया तो उन्हें मई मास में होनेवाले ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर में साक्षात्कार हेतु बुलाया जायेगा।

— मंत्री, श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय

ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में

पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण	साधारण :	४-००
	सजिल्द :	५-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४